अनुक्रमणिका.

प्रस्तावना.

सर्वोत्तम सर्वज्ञ प्रणीत सिद्धांतका सार यह है कि, मोक्षार्थी भव्य जीवोने सम्यग् ज्ञानदर्शन और चारित्रको सम्यग् रीत्यासेवन करना. सम्यग् ज्ञान विना सम्यग्दर्शन (समकित) की प्राप्ती नहि हो सकती है, सर्वज्ञ वीतराग प्रभुने प्रदर्शित कीयाहुवा सर्व जीवाजीवादि नव तत्वोंका, धर्माधर्मादि षट् द्रव्योका, और शुद्ध देवगुरु व धर्मका, यथार्थ स्वरुप समजनेसें सम्यग् ज्ञानकी प्राप्तिद्वारा सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती है. समकित एक अपुर्व चिंतामणी सदृश है और उन्की प्राप्तिकेलीये प्रबल पुरुषार्थकी पुरी जरुरत है प्राप्त कीयाहुवा सम्यग्रत्नको समालके रखनेके वास्ते उन्सेभी अधिक पुरुषार्थकी जरुरत है सद्भाग्य योगे प्राप्त कीयाहुवा सम्यग् ज्ञानदर्शनको सार्थक करनेके वास्ते सत्चारित्रकी खास आवश्यकता है सम्यग् ज्ञानदर्शन और चारित्रकी समकालीन सहायतासें सर्वोत्तम मोक्षसुख स्वाधीन होसकता है जन्म जरा और मृत्युका सर्वथा क्षय होना अ-

र्थात् तत् संबंधी अनंत दुःखका सर्वथा नाश होना वोही वास्तविक मोक्ष है ऐसा सहज एकांत अक्षय अनंत सुख प्राप्त करनेकेलीये सर्वथा उद्यम करना एहीज अमूल्य मनुष्यदेहका सार्थक है उतां प्रमाद वशात् जीवो स्वस्वार्थ साधनेमें उपेक्षा करते है ऐसा प्रमादवाले मनुष्योंकों किंचित् जागृत करनेके वास्ते यातो संक्षेप रुचि बालजीवोकी जीज्ञासा बढानेका पवित्र उद्देशसें विविध विषय गर्भित इस ग्रंथकी योजना करनी उचित लगनेसें प्रस्तुत प्रयास कीया गया है वह सार्थक हो! और उस द्वारा पवित्र शासनकी तात्विक उन्नति होने पावे ऐसा सदाशय रखके इस प्रस्तावना पूर्ण करताहुं.

सन्मित्र कर्पूरविजय.

—:०:—

नूमिका.

महाशय सुज्ञ बंधुओ !

सर्वज्ञनाषित धर्म सबसें श्रेष्ठ है, अनादि है, उनका रहस्य अति गुढ और रसिक है, रचना न्याय पुरः सर है, उनसें सर्व प्रकारका फायदा, सर्वसिद्धि और मोक्षनी प्राप्त होता है इत्यादि धर्मका महात्म्य अपन सब धर्मानुयायी बंधुओसें सुनते है. लेकीन अन्य जनोंके पास यथार्थ विवेचन करके इन्कों हस्तामलकवत् करनेको, मात्र बहोत थोमे बंधुओ शक्तिमान होगा क्योंकी इस प्रकारका उच्च धार्मिक ज्ञान प्राप्त करनेकों कोइ नाग्येज प्रयास करते है. लेकीन परोपकारके वास्ते आत्म समर्पण करनेवाले मुनिमहाराजाओका वचनामृतका सिंचनसें और परंपरासें चलाआवता कुछ अंध श्रद्धानसें अपना कोमल हृदयमें धर्म अंकुर यद्यपी जागृत तो है लेकीन मोक्ष फळ प्राप्त करनेके वास्ते इस अंकुरेकों ज्ञानं जलसें बढाकर समकितरुप मूलीको द्रढ व्रत तपस्यादि शाखा प्रशाखा और देवेंद्र नरेंद्रादि पुष्प पत्र

वाले वृक्षरुप बनानेके वास्ते धार्मिक केळवणीही प्रबल साधन है प्राचीनकालमें सुश्रावकों राज्यतंत्र जैसा महान् कार्य चलानेके साथ उच्च धर्मज्ञान प्राप्त कर, अन्य जीवोंकोंभी प्रतिबोध करतेथे. लेकीन आज कल अपन प्रायः गृह संसार चलानेके वास्ते भी निष्फळ या अल्प फळदायी अन्याययुक्त व्यापारादि कृत्यो करते है. और केवल अंध श्रद्धानसेंही वीरपुत्रो कहलाते है वो अपनको लजास्पद नहि है क्या? इतनातो कबुल करना पमेगा की पूर्व समयापेक्षया वर्तमान समयमें अल्पायुष्य और मंद बुद्धिवाली प्रजा होनेसें ऐसा बहोत विस्तारवाले धर्म रहस्यका पूर्ण रसज्ञ नहि होसकते है. लेकीन परम कृपालु मुनिमहाराजा अपनको वारवार स्मरण कराते है की "यथामति शुभेयतनीयम्" सो आयुष्य और बुद्धिके अनुसार अपने यत्न करना चाहीये पूर्व कालापेक्षया हालमें उपदेशक मुनिमहाराजकी जोगवाइ कम होनेसें उनका वचनामृतको पान करनेकेलीये सर्व बंधुओ भाग्यशाली बनते नहि है सो

ऐसा भव्य प्राणीयोंका अनुग्रहकेलीये आपका समग्र ज्ञानका चितार लेख रुपकमें बहारपाडकर अपनकों आभारी बनानेकों वो चुकते नहि है, और ऐसा प्रयास करनेकी वर्तमान समयमें अति आवश्यक्ता है क्योंकी उत्तरोत्तर आयुष्य बुद्धि और धारणा शक्तिका ह्रास होता है. सो अल्प समयमें सरलतासें ज्यादे बोध होने पावे ऐसा मातृभाषाके लेखोसें बहोत अंशे भव्य जीवांकों अच्छा लाभ होसकता है. इस हेतुसें हमने मुनिमहाराज श्री कर्पूरविजयजीने तत् संबंधी विनती करनेसें इनोंने केवळ परमार्थ बुद्धिसें परिश्रम लेकर इस लघु, सरल, बोधदायी पुस्तक रचकर समस्त संघको आभारी कीया है.

श्री जैनहितोपदेश नामक इस ग्रंथ स्व नामसेंही स्व गांभीर्य महत्ता और बोधकत्व जनावता है उंची हदतक नहि पहुचाहुवा सुज्ञ गुणग्राही निष्पक्षपाती पुरुषोंको हीत बोध करनेकी शक्ति इस ग्रंथ सरलता और रसिकतासें धरावते है वो निर्विवाद है.

इस लघु ग्रंथका क्रम ऐसी सरलतासें कीया-हुवा है की प्रायः सर्व वांचक वर्गको कीसीभी तर-हकी संका या अणसमज रहेगी नहि अलबत एक एक पुस्तक होसके ऐसा हरेक विषयोंमात्र पूर्वोक्त कारणसें थोडे अक्षरोमें प्रदर्शित कीया है जस्सें तत् तत् बिषयोंकी व्याख्या करनेमें इस ग्रंथ चाहीये जतनी पुष्टी करशकेगें नहि तदपि उत्तम, मध्यम, और कनिष्ट सर्व वांचक अधिकारीओ स्वबुद्धि अनु-सार तत् तत् विषयरसमें निमग्न हुवा विना र-हेंगे नहि.

इस ग्रंथमें जैन धर्मका तत्व निरुपण करनेसें प्रथम अपन जैन कीसलीये कहेजाते है ऐसा उप-क्रम करके " जैन " की व्याख्या जैन शब्दमें अपे-क्षित होनेसें जैन शब्दका अर्थ तात्पर्यके साथ दुसरे पर्याय नाम्मो सकारण प्रश्नोतर रुपमें वर्णन कीया है साधु धर्म व श्रावक धर्मका व्रत, जीनेंद्र प्ररुपीत जीवादि नव तत्व वगैरःका वर्णन सविस्तर कीया-गया है. दुसरा और चौथा प्रकरणमें धार्मीक और

नैतिक विषय संबंधी व्याख्यावाला गूढ रहस्यसूचक लघुवाक्यो दीया गया है वो सब प्राणीयोंको एकांत हीतकारी है इंग्लीशका इस्मीयम व अन्य भाषाकी कहानीकी मुवाफीक ऐसा टुंक वाक्यका स्मरण पूर्वक उपयोग करनेसें उभय लोकका हित होसकेगा तीसरा प्रकरणमें गुरु शीष्यका संवादरुप धर्म रहस्यका टुंक और अति उपयोगी वर्णन कीया है प्रकरण पाचवेमें सामायकादि षट् आवश्यक तिन्के पवित्र हेतुयुक्त संक्षेपमें वर्णन कीया है इन्के बाद जैनपर्व तिथियें, रात्री भोजन त्याग, पढा तो सही मगर विचारशुन्य रहा, नवकार महामंत्र, उत्तम गुण ग्रहणता, विविध विषयसंग्रह आदि विषयोंका टुंकमें व्यान दीयागया है. अंतमें मार्गानुसारीका पेंतीस गुन और तत् संबंधी धर्म संग्रहकी गाथा अर्थयुक्त दीयागया है.

इस ग्रंथमें कहाहुवा सब विषयो अति बोधदायी होनेसें आशा है की सर्व धर्मानुरागी बंधुओ इन्का मनन करके गुरु महाराजकी प्रयासको

सार्थक करे.

इस ग्रंथ छपावनेमें मदद देनेवाले गृहस्थोंके नाम.

३० शा. प्रेमचंद मोतिचंद गोघावी.

५ शा. गुलाबचंद वजेचंद नवसारी.

५ शा. कीलाभाइ पानाचंद गणी.

१५० नानी टोळी तरफसें हा. माणेकचंद जेठा. पालीताणा.

१०० शा. जेचंद नीहालचंदकी विधवा बाइ भजम. वडनगर.

२९०

उपर मुवाफीक रुपीआ दोसो अठाणु इस ग्रंथ छपावनेमें हमको मदद मीली है लेकीन खर्च ज्यादा हुवा है सो इस ग्रंथ फक्त मुनिमहाराज और जैनशाळा पुस्तकालयोंकों भेट दीया जायगा. दूसरे साधर्मी बंधुओ ज्यादे लाभ ले सके इस वास्ते इन्कों मूळ किंमतसेंभी कम मूल्यसें फक्त चार आनामें दीयाजायगा.

इस ग्रंथ छपावनेमें मदद देनेवाले सदगृहस्थों-का हम अंतःकरणसें आभार मानते है और आशा रखते है की इस मुवाफिक धनीको आपका धनका सद्व्यय करे इतिशम्.

ली. प्रसिद्धकर्त्ता.



श्री जैनहितोपदेश भाग १ लो.

प्रकरण १ लुं.

श्री जैन बालहितबोधक प्रश्नोत्तर.

---

१ प्र. अपन जैन किसलिये कहे जाते है ?

उ. श्री जिनेश्वर महाराजजीकी आज्ञा मान्य करनेसें.

२ प्र. जिनेश्वर किसलिये कहे जाते है ?

उ. राग, द्वेष और मोह इन्होंका सर्वथा पराजय करनेसें.

३ प्र. रागकों जीत लिया ऐसा कब कहेना चाहिये ?

उ. जब कामविकारकों बिलकुल जीतले तब रागकों जीतलीया कहेना दुरुस्त है.

४ प्र. रागका चिन्ह–महेमान कया है ?

उ. कंचन (सुवर्ण जेवर रत्न वगैरः परिग्रह), और कामिनी (औरत) इत्यादिके उपरसें प्रीति भाव होय सोही रागका चिन्ह है.

५ प्र. द्वेषकों कब जीतलीया कहा जावे ?

उ. जब वैर विरोधकों सब प्रकारसें त्याग दे तब द्वेषका पराजय किया कहा जावे.

६ प्र. द्वेषका चिन्ह–निशानी क्या है ?

उ. शत्रुके उपर अप्रीतिभाव और शस्त्र वगैरःका धारण करना सोही द्वेषका लक्षण है.

७ प्र. मोहकों जीतलीया असा कब कहाजावे?

उ. जब राग और द्वेषकारक कोइभी वस्तुमें किंचित्भी मोह प्राप्त नहि होवे, निर्मल ज्ञान, और विवेककों यथार्थ (जैसा चाहिये वैसा) धारण करलै तब मोह जीत लीया कहेनाही चाहिये.

८ प्र. मोहका लक्षण क्या है?

उ. दूसरेके चित्तकों रंजित करने योग्य चेष्टाओंका उपयोग करना, सो मोहकी निशानी है.

९ प्र. जिनेश्वर भगवंतके दूसरे कोनसे कोनसे परमपावन नाम है ?

उ. अरिहंत, तीर्थंकर, अर्हंत, अरुहंत, महादेव, विष्णु, ब्रह्मा, शिव, शंकर वगैरः जिन वी-

तरागके नाम है.

१० प्र. अरिहंत कहनेका प्रयोजन मुतलब क्या है?

उ. काम, क्रोध, मोह, मत्सरादि जो अंतरके शत्रु वर्गको सर्वथा हनन करनेसें अरि (अंतरंग शत्रु) हंत (नाश) ऐसा बिरुद पायाजाता है.

११ प्र. तीर्थंकर कहनेका हेतु क्या है ?

उ. साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका इन चारों संघरुप तीर्थकी स्थापना करनेसें (तीर्थके करनेवाले) तीर्थंकर कहे है.

१२ प्र. अर्हंत कहनेका सबब क्या है ?

उ. राजा, इंद्र और योगीश्वरोंकोंभी पूजने लायक होनेसे अर्हंत कहे जाते है.

१३ प्र. अरुहंत किसलीये कहे जाते है ?

उ. कर्मबीजका सर्वथा क्षय करनेसें जिस्को जन्म मरण नहि है इस लिये अरुहंत कहे जाते है.

१४ प्र. महादेव कहनेका प्रयोजन क्या है ?

उ. राग द्वेष और मोहका सर्वथा पराजय नाश करनेसें इस दुनियामें गिनती करते जो

जो देव मालुम होतेहै सो सो देव मात्रसें बडे श्रेष्ठ देव है, इसी सबबसें महादेव-बडादेव कहनाही लाजिम है.

१५ प्र. विष्णु कहनेका तात्पर्य क्या है ?

उ. विमल ज्ञानदर्शनसें विश्वव्यापी समस्त पदार्थ सार्थकों जाने देखें इस कारणसें विष्णु कहनाही योग्य है.

१६ प्र. ब्रह्मा कहनेका मुतलब क्या है ?

उ. निरुपम (जिस्कों कोइभी उपमा न दी जावे असा) मोक्ष मार्ग साधनेका सर्वोत्तम उपयोग साधनेसें अर्थात् मोक्षगमन योग्य मार्ग साधन निर्माण करनेवाले होनेसें ब्रह्मा कहेजातेहै.

१७ प्र. शिव कहनेका परमार्थ क्या है ?

उ. शिव (निरुपद्रव मोक्ष) स्थानकों सर्वथा प्राप्त हुअे इसीसें शिव कहनाही दुरुस्त है.

१८ प्र. शंकर कहनेका सबब क्या है ?

उ. स्वर्ग, मृत्यु और पाताल यह तीन भुवनके जीव मात्रकों सुख शान्ति करनेवाले है इस सबबसें शंकर है.

१९ प्र. रागके दूसरे समान पर्यायवाले कोनसे कोनसे नाम है ?

उ. रति, प्रीति, स्नेह, प्रतिबंध, माया, ममता वगैरः नाम है.

२० प्र. द्वेषमे दूसरे समान पर्यायवाले नाम कोनसे है सो बतलाइये ?

उ. मत्सर, अरति, अप्रीति, अरुचि, कुराग, कलेश, विरोध वगैरः द्वेषकी समानता दिखलानेवाले नाम है.

२१ प्र. मोहके दूसरे समान पर्यायवाचक कोनसे नाम है ?

उ. मूर्छा, अहंता, ममता, ममत्व, परिग्रह इत्यादि मोहकेही नाम है.

२२ प्र. जैन दर्शनमें गुरु किसका कहने चाहिये?

उ. श्री जिनेश्वर प्रणीत (प्रभुके कहे हुवे) तत्व रहस्यका जाननेवाले और अन्य जीवोंको हितका उपदेश देनेमें हमेशां तत्पर—उत्साहवंत हो उसीकुंही गुरु कहने योग्य है.

२३ प्र. जैन दर्शनमें गुरुके पर्याय शब्द कोनसे कोनसे है ?

उ. साधु, निर्ग्रंथ, मुमुक्षु, क्षमाश्रमण, मुनि, संयमी आदि जैन पंथानुगामी गुरुके नाम है.

२४ प्र. साधु कहनेका प्रयोजन क्या है ?

उ. तप, जप, संयमके बलसें आत्म साधन करनेमें तत्पर रहते है इसीलीये साधु कहेजाते है.

२५ प्र. निर्ग्रंथ कहनेका मुतलब क्या है ?

उ. ग्रंथ अर्थात् बाह्य और अंतर यह दोनुं प्रकारके परिग्रहकों बिलकुल त्याग दिया. छोड़ दिया, यावत् निस्पृहता धारण की इस सबबसें निर्ग्रंथ–ग्रंथ रहित कहाते है.

२६ प्र. मुमुक्षु कहनेका कारण क्या है ?

उ. जन्म, जरा और मृत्यु विगरके मोक्ष सुखकीही केवल अभिलाषा रखकर दूसरी सब आशा तृश्नाकों उखेड़ डाली, इस लीये मुमुक्षु पदकेही अधिकारी है.

२७ प्र. क्षमाश्रमण कहनेका तात्पर्य कोनसा है ?

उ. क्षमा प्राधान्य श्रमण–मोक्षमार्ग साधन प्रयत्न करनेमें विशेष प्रकारसें तत्पर रहनेसें क्षमाश्रमण कहे जाते है.

१८ प्र. मुनि कहनेका प्रयोजन क्या है? सो बतलाओ?

उ. अखिल—समस्त जगत्का तत्व (स्वरुप) मुणवासें—सम्यग् जान्नेसें मुनि कहाते है.

१९ प्र. संयमी कहनेका प्रयोजन क्या है?

उ. संयम (साधुधर्म दीक्षा) सम्यक् पालनेसें संयमी कहे जाते है.

२० प्र. श्री जिनेश्वर नगवानने धर्म मोक्ष मार्ग कैसा बतलाया है?

उ. सम्यक् ज्ञान, दर्शन (श्रद्धा) और चारित्र विवेकरुप धर्म मोक्ष मार्ग बताया है.

२१ प्र. उपर बतलाया गया जो धर्म उन्हकुं पालनेके लीये कौन अधिकारी (लायक) है?

उ. क्षुद्रतादि इक्कीस दोष रहित, मध्यस्थतादि गुणवंत हो, सोही धर्म मोक्ष मार्गका सच्चा अधिकारी है.

२२ प्र. धर्मके अधिकारीमें सामान्य प्रकारसें कोनसे कोनसे गुण होने चाहिये? किंवा होतेहै?

उ. १ गंनीर आशय, २ सुंदर शरीर, ३ शी-

तल स्वभाव, ४ लोकप्रिय, ५ अक्रूर, ६ पापभीरु, ७ निर्दंभ, ८ दाक्षिण्यतावंत, ९ लज्जावंत, १० दयावंत, ११ निष्पक्षपाती, १२ गुणरागी १३ सत्यवक्ता, १४ धर्मि कुटुंबवाला, १५ दीर्घदर्शि, १६ सुजान, १७ वृद्धसेवी, १८ विनयवंत, १९ कृतज्ञ, २० परोपकारी और चालाक यह गुन जिसमें मौजुदहो, सोही धर्मका अधिकारी जान्ना.

३३ प्र. धर्म कितने प्रकारके है ?

उ. गृहस्थ धर्म और यति—साधु धर्म यह दो प्रकारके है.

३४ प्र. गृहस्थ धर्म किसकुं कहते है ?

उ. गृह (घर) वासमें रहकर श्री जिनेश्वर देवोक्त तत्व श्रद्धापूर्वक बन शके, तैसे व्रत, पच्चखाण करे उस्कों गृहस्थ धर्म कहा जाता है.

३५ प्र. साधु—यतिधर्म किसकुं कहते है ?

उ. गृहस्थावास त्यागकर पांच महाव्रत अंगिकार करकें रात्रिभोजन त्याग व्रत आदिके लीये सख्त नियम धारन करके गृहस्थोकों बोध देना सो साधुधर्म कहा जाता है.

३६ प्र. पांच महाव्रत कोनसे है ?

उ. बिलकुल जीवहिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह त्याग यह पांच महान् व्रत है.

३७ प्र. बिलकुल जीवहिंसाका त्याग किस रीतिसें पालना चाहिये ?

उ. किसी जीवकों राग द्वेषसें नाश करना नहिं, नाश करानेकी सम्मतीभी न दें और जो कोइ सख्स नाश करता हो उसकी अनुमोदना (अच्छा करता है ! ठीक किया है ! ऐसा कहना) भी मन वचन और कायासें न करे, उस्कों अहिंसाधर्म पालन करा कहा जाता है.

३८ प्र. बिलकुल झूठ बोलनेका त्याग किस प्रकारसें पाले ?

उ. क्रोध, मान, माया, लोभ, भय या हास्यसें थोडाभी झूठ न बोले.

३९ प्र. बिलकुल मालधनीके दिये शिवाय कुछ भी चीज न लेवे वह अदत्तादान लेनेका नियम किस रीतिसें पाले ?

उ. जिनेश्वर भगवान्‌की या गुरुजीकी आज्ञा विरुद्ध कुछभी चीज लेवे देवे नहि. अगर उन्हों-की आज्ञा हुए बादभी जो मालधनीकी रजा न मिली हो तो कुछभी चीज लेवे देवे नहि. अ-गर मालधनीकी रजा मिलचूकी हो मगर सचि-त्त या मिश्र वस्तु हो तो लेवे नहि, उस्कों अद-त्तादान विरमण व्रत पालन किया कहाजाता है.

४० प्र. सर्वथा मैथुन त्याग—ब्रह्मचर्यव्रत किस प्रकारसें पालना ?

उ. देव, मनुष्य और तिर्यंच संबंधी विषय क्रीडा बिलकुल त्यागदे, किंवा पांचों इंद्रियोंके विषयोंकों कब्ज करे. आप उन्होंकों वश्य न हो, उस्कों सर्वथा मैथुन त्याग किया कहा जावे.

४१ प्र. सर्वथा परिग्रह त्याग किस तरांहसें पा-लन करे ?

उ. जोस्सें मूर्छा हो तैसी भारे या हलकी (सचेत अचेत या मिश्र) वस्तुका संग्रहही न करें तब बिलकुल परिग्रह परित्याग किया क-हा जावे.

४२ प्र. सर्वथा रात्रि भोजनका त्याग किस प्रकारसें पाले ?

उ. कोइभी प्रकारका आहार, सूर्योदय हुए प्रथम या सूर्यास्त हुए बाद न खावे. (वास्तविक रीति तो यह है कि सूर्यके उदय होने बाद दो घडी और सूर्य अस्त पहिलेकी दो घडीभी त्याग देनी योग्य है. नहितो रात्रि भोजनका भांगा लगता है.

४३ प्र. उपर कहे हुए व्रतोंकों महाव्रत कहनेका सबब क्या है ?

उ. गृहस्थके अणुव्रतकी अपेक्षासें वो महाव्रत कहे जाते है. किंवा महान् शूरवीर मनुष्यसें ही सेवन कीये जाते है (डरपोक—कातरसें सेवन न कीये जावे) इसीलिये उन्हकों महाव्रत कहतेहै.

४४ प्र. अणुव्रत किसकों कहते है ?

उ. अणु अर्थात् छोटा मुनिके महान् व्रतोंसे बहोतही कम—अल्प होनेसें अणुव्रत कहे जाते है.

४५ प्र. गृहस्थके अणुव्रत कोनसे कोनसे है ?

उ. स्थूल (बडी) हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन-

का त्याग और परिग्रहका प्रमाण रक्खे, वह गृहस्थके पांच अणुव्रत है.

४६ प्र. स्थूल हिंसासें छूटजाना वो कैसे ?

उ. निरपराधी, त्रस जीवकी निष्कारण जान बुझकें हिंसा न करे, सो स्थूल हिंसासें मुक्त होना कहा जाता है.

४७ प्र. स्थूल झूठसें बचजाना सो क्या ?

उ. कन्या—पशु—भूमि संबंधी नाहक झूठ बोलना, कोर्ट अदालतमें जाकर झूठी गवाह देना और खोटे दस्तावेज बनाना यह पांच बडे झूठोंसे अलग होजाना उस्कुं स्थूल असत्य विरमण व्रत कहते है.

४८ प्र. स्थूल अदत्त—चोरीका त्याग व्रत किस तरह है ?

उ. जान बूझकर चोरी करनी, या चोरीका माल खरीदना, पिराया माल हजम करजाना, विश्वासघात करना, अच्छी बूरी चीजोंकों एकत्र मिलाना और जकात—दाणचोरी करना. मतलबमें 'जिस्से राजदंडका भय प्राप्त होय सोही

चोरी कही जाती है. वह उक्त कथित पांच भेद अदत्तका त्याग करे.

४९ प्र. स्थूल मैथुन त्याग किसको कहते है ?

उ. परस्त्री, वेश्या, विधवा, या बालकुमारी इन्होंके साथ अत्याचार–संभोग करनेका बिलकुल त्याग करके अपनी विवाहिता स्त्रीमें संतोष करे. (स्त्री अपने पतिमें संतोष करें.) सो स्थूल मैथुन त्याग व्रत कहा जाता है.

५० प्र. परिग्रह प्रमाण किस्को कहाजाता है ?

उ. धन, धान्य वगैरः नव प्रकारके परिग्रहका प्रमाण अर्थात् 'इतनेसें ज्यादा मेरे स्वभोगार्थ न चहिये' असा नियम रक्खे और प्रमाणसें ज्यादा हो सो शुभ धर्म मार्गमें व्यय कर देवे, उस्को परिग्रह प्रमाण व्रत कहते है.

५१ प्र. यह पांच अणुव्रतके शिवाय गृहस्थको दूसरे कोनसे व्रत होते है ?

उ. तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत यह मिलकर बारह व्रत होते है.

५२ प्र. तीन गुणव्रत कोनसे कोनसे है

उ. दिशा (जाने आनेका) प्रमाण, भोगोपभोग, और अनर्थ दंड यह तीन गुणव्रत संज्ञा धारक है ?

५३ प्र. दिशा प्रमाण किस्कों कहते है ?

उ. पूर्व, पश्चिम उत्तर दक्षिण यह चार दिशा और इशान, वाव्य, नैऋत्य, अग्निय यह चार विदिशा, और उपर नीचे जाने आनेका संबंधमें धर्म कार्य शिवाय अपने कार्य निमित्त जाने आनेका प्रमाण प्रतिबंध रक्खे उस्कों दिशा प्रमाण कहते है.

५४ प्र. भोगोपभोग विरमण किस्कों कहते है ?

उ. पंदह कर्मादान महापाप व्यापारका त्याग करे, और चौदह नियम धारण करे उस्कों भोगोपभोग विरमणव्रत कहते है.

५५ प्र. अनर्थ दंड विरमण किस्कों कहते है ?

उ. पाप कार्यके साधनभूत—कुल्हारा, हल, मूशल, चक्की वगैरः तैयार करके दूसरेकों न देवे, पापका उपदेश न देवें, आर्त्तरौद्रध्यान न ध्यावे, नाटक चेटक—खेल तमासे भांडोकी नकल वे-

श्याओंका नाच न देखें, और हिंसक-मांसाहारी जीवोकों व्यापार अर्थे न पोषन करे अर्थात् पापी जीवोंको न पाले उस्को अनर्थदंड विरमण व्रत कहते है.

५६ प्र. चार शिक्षाव्रत कोनसे कोनसे है?

उ. सामायिक, दिशावगासिक, पौषध और अतिथि संविभाग यह चार शिक्षाव्रत कहेजाते है.

५७ प्र. सामायिक किस्कों कहते है?

उ. संकल्प निश्चयपूर्वक समताभावमें पाप व्यापारकों त्याग कर जघन्य दो घडी और उत्कृष्ट जीवन पर्यंत कायम रहे उस्कों सामायिक व्रत कहते है.

५८ प्र. दिशावगासिक किस्कों कहते है?

उ. छठे व्रतमें धारण की हुइ दिशाओंका संक्षेप करना, और मर्यादामें रहकर धर्मध्यान सेवन करना उसीको दिशावगासीक व्रत कहते है.

५९ प्र. पौषधव्रत किस्कों कहाजाता है?

उ. जीस्सें धर्मकी पुष्टि—वृद्धि हो वह पौषधके चार प्रकार है. आहारपोषद, (उपवास आ-

यंबिल बगैर: १, शरीरसत्कार त्याग पोषह २, ब्रह्मचर्य पोषह ३, और पाप व्यापार परिहार करनेरूप पोषह ४, यह चार भेद है सो उपयोगमें लेवे उस्कों पौषधव्रत कहाजाता है.

६० प्र. अतिथि संविभाग सो क्या ?

उ. अतिथि याने अणगार साधुजी उन्होंकों आहार पाणी व्होराकर सुपात्र दान देकर भोजन करे सो अतिथि संविभाग कहाजाता है.

६१ प्र. सामान्य प्रकारसें धर्मके कितने भेद है?

उ. धर्मके चार भेद है.

६२ प्र. वह चार भेदोंके क्या नाम है ?

उ. दान, शील, तप और भाव यह चार धर्मभेदाभिधान है.

६३ प्र. सम्यक्ज्ञान किस्कों कहते है ?

उ. सर्वज्ञ श्रीजिनेश्वर भगवानजीने फरमाये हुवे जीवाजीव नव तत्वोंकों यथास्थित जान्ना उस्कों सम्यक्ज्ञान कहाजाता है.

६४ प्र. सम्यक्दर्शन (समकित) किस्कों कहतेहै?

उ. श्री जिनेंद्र परमात्माजीने फरमाये हुवे

तत्त्वोपर पूर्ण प्रतीति–श्रद्धा–आस्ता धारण करे और दूसरे पाखंडी पोपलीलाधारीओंकी भ्रमजालमें न फसें उस्को सम्यग्दर्शन कहा जाय.

६५ प्र. सम्यक्चारित्रविवेक किस्सें कहनायोग्य है ?

उ. तत्त्वकों यथार्थ समझकर सहहकें हित-कारी मार्गकों ग्रहण करें और अहितकारी मार्गकों त्यागदे, सो विरति किंवा संयम कहाजाता है.

६६ प्र. सर्वज्ञ श्री जिनेश्वर भगवानजीने प्ररुपे हुए कोनसे कोनसे तत्त्व है ?

उ. जीव १, अजीव २, पुण्य ३, पाप ४, आश्रव ५, संवर ६, बंध ७, निर्जरा ८, और मोक्ष ९ यह नव तत्त्व श्रीदेवाधिदेवने फरमाये है.

६७ प्र. जीवका लक्षण क्या है ?

उ. ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य, और उपयोग.

६८ प्र. अजीवका लक्षण क्या है ?

उ. जीवके लक्षणोसें जो विपरित लक्षणवंत हो सो अजीव है.

६९ प्र. जीव कितने है ?

उ. सब जातिके मिलकर अनंत जीव है.

७० प्र. जीवके उत्पत्तिस्थान—योनिके कितने प्रकार है?

उ. सब जातिकी मिलकर ८४ लक्ष है.

७१ प्र. जीवायोनि कहनेका भावार्थ क्या है ?

उ. जीवका उत्पत्तिस्थान अर्थात् वर्ण, गंध, रस, और स्पर्श जीस्के समान हो तैसे अमुक जातिके उत्पत्तिस्थान उसीकुं जीवयोनी कही जाती है.

७२ प्र. अजीव पदार्थ कोनसे कोनसे है ?

उ. धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और कालद्रव्य यह पांचों पदार्थ अजीव तत्वदार्शि है.

७३ प्र. धर्मास्तिकायका स्वभाव क्या है ?

उ. जीवकों और पुद्गलकों चलते समय सहायभूत होनेका धर्मास्तिकायका स्वभाव है.

७४ प्र. अधर्मास्तिकायका स्वभाव क्या है सो बतलाओ ?

उ. जीवकों और पुद्गलकों स्थिर रहते सहायभूत—मददगार होनेका अधर्मास्तिकायका स्वभाव है.

७५ प्र. आकाशास्तिकायका क्या स्वन्नाव है ?

उ. जीवकों और पुज्ञलादिक द्रव्यकों रहनेकें लीये अवकाश देनेका आकाशास्तिकायका स्वन्नाव है.

७६ प्र. पुज्ञलका क्या लक्षण है ?

उ. शब्द, अंधकार, उद्योत, प्रन्ना, गंज, आताप, ठंमी, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श यह पुज्ञलके लक्षणहैं.

७७ प्र. कालके लक्षण कोनसे है ?

उ. समय लक्षण (वस्तुका नया पुराना न्नाव होनेका साधन रुप).

७८ प्र. पुण्यका क्या लक्षण ह ?

उ. सुख प्राप्त होनेका कारणन्नूत शुन्न कर्म प्रकृतिका संचय करना सोही पुण्यका लक्षण है.

७९ प्र. पापका लक्षण क्या है ?

उ. दुःख (कटुक फल) प्राप्त होनेका कारणन्नूत अशुन्न कर्मका संचय करना सो पापकाही लक्षण है.

८० प्र. आश्रवका क्या लक्षण है ?

उ. शुन्न किंवा अशुन्न कर्मका आवागमन होनेका द्वार इंद्रिय कषाय वगैरः आश्रवका लक्षण है.

८१ प्र. संवरका क्या लक्षण है ?

उ. आतेहुए कर्मोंको रुकानेका साधन—आश्रव-द्वारकों बंध करनेरुप सोही संवरका लक्षण है.

८२ प्र. बंधका क्या लक्षण होता है?

उ. दूध और पानीकी तरह जीव कर्मका एकत्र होना सोही बंधका लक्षण है.

८३ प्र. मोक्षका लक्षण क्या है?

उ. कर्म बंधनसें आत्माकों सर्वथा मुक्त होजाना सो मोक्षका लक्षण है.

८४ प्र. निर्जराका लक्षण क्या है?

उ. कर्म बंधनसें कितनेक अंशोसें मुक्त होना सो निर्जराका चिन्ह है.

८५ प्र. पुण्य संचय करनेका उपाय क्या है?

उ. शुभ राग भक्तिभावसें सुपात्र दान, प्रभुपूजन साधर्मियोंकी सेवना, तीर्थ संरक्षण, शास्त्र श्रवण, और जीवदया वगैरः पुण्य एकत्र करनेके उपाय-रुप है.

८६ प्र. पाप संचय करनेका मार्ग कोनसा है?

उ. वीतराग प्ररुपित मार्गसें विरुद्ध वर्त्तन चलाना विषयरसमें आनंदित रहना, निर्दयता और दुष्ट अ-

ध्यवसाय आर्त्तरौद्रध्यान वगैरः पापसंग्रह करनेका ही मार्ग है.

७७ प्र· आश्रव कोनसे कारणोसे होता है ?

उ. पांचों इंद्रिय, चारो कषाय, पांचों अणुव्रत और तीन योग वगैरः आश्रवकेही कारणभूत है.

७८ प्र· संवरका लाभ काहेसे प्राप्त होता है ?

उ. पांच समिति, तीन गुप्ति, बाइस परिसह, दश प्रकारके यतिधर्म, बारह भावना और पांच प्रकारके चारित्र इन्होके संयोगसें संवरका लाभ–फायदा हांसिल होता है.

७९ प्र. बंध कितने प्रकारसें और किस प्रकारसें होता है ?

उ. चार प्रकारसें; अर्थात् प्रकृति, स्थिति, रस और प्रदेशरुप मोदक (लड्डु) के दृष्टांतसें जाणना.

८० प्र. मोक्ष कितने प्रकारसें होता है ?

उ. पंदरह भेदसें सिद्ध होते है अर्थात् तीर्थ, अतीर्थ, जिन, अजिन, गृहस्थ, अन्यलिंगी, स्वलिंगी, स्त्री, पुरुष, नपुंसक, प्रत्येकबुद्ध, स्वयंबुद्ध, एकसिद्ध अनेकसिद्ध और बुद्धबोधी यह पंदरह भेद सिद्धके है.

ए१ प्र· निर्जरा किस रीतिसें होशकती है ?

उ· बारह प्रकारका तप याने ६ बाह्य ६ अभ्यंतर मिलकर जो बारह प्रकारका तप है सो सेवन करनेसें निर्जरा होती है.

ए२ प्र· पांच इंद्रियें कोनसी कोनसी है?

उ. स्पर्श इंद्रिय (आंख) रसेंद्रिय, (जीन्न) घ्राणेंद्रिय, (नाक) नेत्रेंद्रिय (चक्षु) और श्रोत्र इंद्रिय (कान) यह पांच इंद्रिय है.

ए३ प्र. चार कषाय कोनसे कोनसे है ?

उ. क्रोध, मान, माया और लोन्न यह चार कषाय है.

ए४ प्र. अव्रत कोनसे कोनसे है, सो बतलाइये ?

उ. हिंसा, असत्य, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह यह पांच अव्रत है·

ए५ प्र. पांच अव्रत कौनसे कहे जाते है ?

उ. प्राणातिपात (जीवहिंसा), मृषावाद (जूठ), अदत्तादान (चोरी), मैथुन और परिग्रहरुप यह पांच अव्रत है.

ए६ प्र. तीन योग कौनसे कौनसे है ?

उ. मनयोग, वचनयोग और काययोग यह तीन है.

९७ प्र. लेश्याका मायना क्या और वह कौनसी कौनसी है?

उ. द्रव्य कषायके साथ जीवके शुभाशुभ अध्यवसाय विशेष—कृष्ण. नील, कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ल यह ६ लेश्याए है.

९८ प्र. ध्यान किसको कहते है और कौनसे कौनसे है?

उ. चित्तकी एकाग्रतासें हुआ अवलंबन विशेष—आर्त्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल यह चार ध्यानका भेद है

९९ प्र. समिति किसको कहते है और कौनसी कौनसी है?

उ. समिति अर्थात् सम्यक् प्रवर्त्तन (वह वह बाबतमें उपयोग) इर्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षेपना और पारिष्ठापनिकारुप पांच है.

१०० प्र. गुप्ति किसको कहते है और कौनसी कौनसी है?

उ. गोपन करना-समालना-संरक्षण करना यह गुप्ति शब्दका अर्थ—मतलब है. वह मन, वचन और. काया संबंधी तीन मनगुप्ति वगैरः है.

१०१ प्र. परिसहका मायना क्या है और. कौनसे

कौनसे है ?

उ. समस्त प्रकारसें सहन करने योग्य हो सो परिसह कहा जाता है और वह बाइस प्रकारके है· भूख, तृषा, ठंडी, ताप, डंस, अचेल, अरति, स्त्री, चर्या, निषेधिका, सय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मळ, सत्कार, प्रज्ञा, और अज्ञान वगैरः अनुकुल प्रतिकुल दोनु प्रकारके है·

१०२ प्र. दशविध यतिधर्म किस प्रकारसें है ?

उ. क्षमा, मृदुता, सरलता, निर्लोभता, तपस्या, संयम, सत्य, शौच, (पवित्रता), निष्परिग्रहता और ब्रह्मचर्य यह दश प्रकारसें यतिधर्म है.

१०३ प्र. बारह प्रकारकी भावनाओ किस तरह है ?

उ. अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आश्रव, संवर, निर्ज्जरा, लोकस्वरुप, बोधी दुर्लभ और धर्मभावना.

१०४ प्र. चारित्रके पांच प्रकार कौनसे है ?

उ. सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहार विशुद्धि सूक्ष्म संपराय अने यथाख्यात यह पांच प्रकारके है.

१०५ प्र. कर्मका प्रकृतिबंध किसकों कहते है और

वह किस तरह है ?

उ. प्रकृति अर्थात् स्वभाव, जैसें जुदे जुदे द्रव्योंका स्वभाव भिन्न भिन्न होता है, तैसें कोइ कर्मका स्वभाव, आत्माके ज्ञान गुणकों और किसीका दर्शनादिककों आच्छादन करनेका स्वभाव होता है. तैसा बंध, सो प्रकृतिबंध कहा जाता है.

१०६ प्र. मूल कर्म प्रकृति कितनी है और उत्तर (भेद) प्रकृति कितनी है ?

उ. मूल–मुख्य कर्म प्रकृति ८ है और उत्तर प्रकृति १५८ है.

१०७ प्र. मूल प्रकृतिके नाम कौनसे कौनसे है ?

उ. ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, नाम, आयु, गोत्र और अंतराय यह आठ मूल प्रकृति है.

१०८ प्र. उत्तर प्रकृति १५८ किस प्रकारसें होती है ?

उ. ज्ञानावरणीयकी ५, दर्शनावरणीयकी ९, वेदनीयकी २, मोहनीयकी २८, नामकी १०३, आयुकी ४ गोत्रकी २, और अंतरायकी ५, यह सब मिलकर १५८ होती है.

१०९ प्र. ज्ञानावरणीय वगैरः कर्मोंका कैसा स्वन्नाव है?

उ. आत्माका ज्ञान दर्शनादिक गुणोंकों आच्छा-दन करनेका—ढांप देनेका स्वन्नाव है.

११० प्र. ज्ञानावरणीय कर्म कैसा कैसा ज्ञानकों कि-स प्रकारसें आच्छादन करता है?

उ. मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव और केवल ज्ञानकों यह कर्म वस्त्रकी तरांहसें ढांप देता है.

१११ प्र. मतिज्ञानादिक पांचों ज्ञानके मिलकर कि-तने न्नेद हैं?

उ. मतिके २८, श्रुतके १४, अवधिके ६, मनःप-र्यवके २ और केवलका १ यह सब मिलकर ५१ न्नेद है.

११२ प्र. दर्शनावरणीय कर्म किस प्रकारसें दर्शन गु-णको आच्छादन करता है?

उ. प्रतिहारी (पोलिया) की तरांहसें.

११३ प्र. ज्ञान और दर्शन गुणमें क्या तफावत है?

उ. आत्माका ज्यादा उपयोग सो ज्ञान, और सामान्य उपयोग सो दर्शन है.

११४ प्र. दर्शनके कितने न्नेद है?

उ. चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल दर्शन मि-

लकर चार भेद होते है.

११५ प्र. दर्शनावरणीयके ए भेद कोनसे कोनसे है ?

उ. चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल दर्शनावरणीय यह ४ और निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला और थिणद्धी-यह ए भेद है.

११६ प्र. वेदनीय कर्मका कैसा स्वभाव है?

उ. जीवकों शाता अशाता भुक्तानेका स्वभाव है.

११७ प्र. वेदनीय कर्मके कितने भेद है ?

उ. शाता वेदनीय और अशाता वेदनीय.

११८ प्र. वेदनीय किस प्रकारसें कौनसे गुणकों ढांपता है ?

उ. सहेतसें लिप्त हुइ तलवार और साफ तलवार चाटनेकी तरांहसें शाता, अशाता वेदनीय कर्म आत्माका अव्याबाध सुख गुणकों आछादन करता है.

११ए प्र. मोहनीय कर्मका स्वभाव कैसा है ?

उ. मदिराकी तरांह आत्माका सम्यकृत्व और चारित्र गुणकों आछादन करनेका स्वभाव है.

१२० प्र. मोहनीय कर्मको मुख्य कितने और कौनसे

भेद है ?

उ. दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय यह दो भेद है.

१२१ प्र. दर्शन मोहनीय कर्मके कितने और कौनसे भेद है ?

उ. समकित मोहनीय, मिश्रमोहनीय और मिथ्यात्व मोहनीय यह तीन भेद है.

१२२ प्र. चारित्र मोहनीय के मुख्य भेद कितने है ?

उ. कषाय मोहनीय और नोकषाय मोहनीय यह २ भेद है.

१२३ प्र. कषाय मोहनीयके कितने भेद है ?

उ. अनंतानु बंधी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी और संज्वलन भेदसें क्रोध, मान, माया और लोभ यह चार चार भेद मिलाके १६ भेद होते है.

१२४ प्र. कषाय किसकों कहते है ?

उ. जिससें संसारका लाभ होता है सोही कषाय कहा जाता है.

१२५ प्र. नोकषाय किसकों कहते है ?

उ. कषायके सहचारी, कषायकों पैदा करे सो

नोकषाय कहा जाता है.

१२६ प्र. नोकषाय मोहनीयके कितने भेद है ?

उ. पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद यह तीन वेदमोहनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, और दुगंछा यह ६ हास्यादि मोहनीय मिलकर ९ नो कषाय मोहनीयके भेद है.

१२७ प्र. नाम कर्मका स्वभाव कैसा है ?

उ. चित्रकारके समान विविध प्रकारकी आकृतिये धारन करकें आत्माका अरुपी गुणकों ढांप देनेका स्वभाव है.

१२८ प्र. नाम कर्मके मुख्य भेद कितने है ?

उ. शुभ नामकर्म और अशुभ नाम कर्म यह दो भेद है.

१२९ प्र. शुभ नाम कर्मकी थोमी प्रकृति कौनसी कौनसी है ?

उ. उत्तम संघयण वा संस्थान, उत्तम वर्ण, गंध, रस, और स्पर्श, सौभाग्य, आदेय, प्रत्येक, त्रस, बादर, पर्याप्त स्थिर और तीर्थंकर नाम कर्म वगैरां शुभ नाम कर्मकी प्रकृतिये है.

१३० प्र. अशुन्न कर्मकी थोमी प्रकृतिये कौनसी कौनसी है ?

उ. पूर्वोक्त प्रकृतिसें विपरीत, साधारण, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, अस्थिर प्रमुख है.

१३१ प्र. सब मिलकर नाम कर्मकी कितनी प्रकृति है?

उ. १०३ है प्रकारांतरसें ४२, ६७ और ए३ न्नी है.

१३२ प्र० आयुष्य कर्मका स्वन्नाव कैसा है ?

उ० कैदखाना जैसा आयुकर्मका स्वन्नाव होनेसें आत्माका अक्षय गुणकों आछादन करकें तिन्हकों चार गतिके अंदर न्नमण कराता है.

१३३ प्र. आयुष्य कर्मके कितने न्नेद है ?

उ. देव आयु, मनुष्य आयु, तिर्यंच आयु और नरक आयु यह चार न्नेद है.

१३४ प्र. गोत्र कर्मका कैसा स्वन्नाव होता है ?

उ. कुंन्नारका घमा जैसा उंचा नीचा होनेसें, आत्माका अगुरु लघु स्वन्नावकों ढांपनेका स्वन्नाव है.

१३५ प्र. गोत्र कर्मके कितने न्नेद है ?

उ. उच्च गोत्र और नीच गोत्र यह दो न्नेद है.

१३६ प्र. गोत्रकों घमेकी उपमा किस रीतिसें घट

शकती है ?

उ. दुध, घीका घडा प्रशंसापात्र है और मदिराका घडा निंदापात्र होता है इसलिये.

१३७ प्र. अंतराय कर्मका स्वभाव कैसा होता है ?

उ. खजानचीके समान स्वभाव होनेसे वह आत्माकी स्वभाविक दानादिक शक्तिकों आछादित करता है.

१३८ प्र. अंतराय कर्मके कितने भेद होते है ?

उ. दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय और वीर्यांतराय यह पांच प्रकार है. (यहांतक सब स्वभाव बंध के संबंधसें प्रसंगोपात कुछ कहा है. अब किंचित् कालमान समुझनेके लिये कहेते है.)

स्थितिबंध.

१३९ प्र. समय, बारीकमें बारीक वख्तका नाम माप है.

१४० प्र. आवली, असंख्य समयकी होती है.

१४१ प्र. क्षुल्लकभव, २५६ आवलीसें होते है.

१४२ प्र. श्वासोश्वास, १७ से ज्यादा क्षुल्लकभव व्यतीत होनेसें होता है.

१४३ प्र. मुहूर्त–१६७७७२१६ आवलि, किंवा ३७७३ श्वासोश्वास प्रमाण होता है.

१४४ प्र. मुहूर्त–दो घमी वा ४८ मीनीटका होता है.

१४५ प्र. अहोरात्री–३० मुहूर्त्त वा ६० घमीका होता है.

१४६ प्र. पक्ष, महिना–१५ और ३० अहोरात्रीसें होता है.

१४७ प्र. ऋतु–दो महीनेकी होती है. तैसी ऋतु हर सालमें छः होती है. (वर्षा, शरद, हेमंत, शिशिर, वसंत और ग्रीष्म यह छ ऋतु है.)

१४८ प्र. अयन–छ महिनेका होता है. (दक्षिणायन और उत्तरायण.)

१४९ प्र. वर्ष-बारह महीनेका होता है.

१५० प्र. पूर्वांग, ८४ लक्ष वर्षका होता है.

१५१ प्र. पूर्व, ८४ लक्ष पूर्वांगका होता है.

१५२ प्र. पल्योपम,-असंख्यात पूर्वका होता है.

१५३ प्र. सागरोपम-दश कोमाकोम पल्योपम व्यतीत होनेसें होता है.

१५४ प्र. उत्सर्पीणी-दश कोम्राकोम्री सागरोपमकी होती है.

१५५ प्र. अवसर्पीणी-दश कोम्राकोम्री सागरोपम व्यतीत होवे तब पूर्ण होती है.

१५६ प्र. कालचक्र-२० कोम्राकोम्री सागरोपमका वा बारह आरेका होता है.

१५७ प्र. पुद्गल परावर्त्तन–अनंत कालचक्र गयेसें होता है.

१५८ प्र. ज्ञानावरणीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति–३० कोम्राकोम्र सागरोपमकी है.

१५९ प्र. दर्शनावरणीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति–३० कोम्राकोम्र सागरोपमकी है.

१६० प्र. वेदनीय कर्मकी	"	"	"
१६१ प्र. अंतराय कर्मकी	"	"	"
१६२ प्र. मोहनीय कर्मकी	"	७०	"
१६३ प्र. नामकर्मकी	"	२०	"
१६४ प्र. गोत्रकर्मकी	"	"	"
१६५ प्र. आयुकर्मकी	"	३३	साग-

रोपमकी है.

१६६ प्र. वेदनीय कर्मकी जघन्य स्थिति—१२ मुहूर्त्त-की होती है. कितनेक आचार्य अंत मुहुर्त्तकीभी कहते है.

१६७ प्र. नामकर्मकी „ ८ „

१६८ प्र. गोत्रकर्मकी „ ८ „

१६९ प्र. शेष कर्मोंकी „ अंतर्मुहूर्त्तकी ही है.

१७० प्र. देव, नारकीका जघन्य आयुष—१० हजार वर्षका है.

१७१ प्र. अनुत्तर विमानवासि देवका उत्कृष्ट आयु—३३ सागरोपमका होता है.

१७२ प्र. सातमी तमःतमप्रभा नामकी नारकीका „ „

१७३ प्र. युगलीये मनुष्यका उत्कृष्ट आयु—३ पल्योपमका है.

१७४ प्र. संमुर्छिम मनुष्यका जघन्य उत्कृष्ट आयु—अंतर्मुहूर्त्तका है.

१७५ प्र. चउरींद्रियका उत्कृष्ट आयु—छः महीनेका होता है.

१७६ प्र. तेरिंद्रियका „ ४९ दिनका होता है.
१७७ प्र. बेरिंद्रियका उत्कृष्टायु १२ वर्षका होता है.
१७८ प्र. पृथिवीकायका „ २२००० वर्षका होता है.
१७९ प्र. अप्कायका „ ७००० वर्षका.
१८० प्र. वायुकायका „ ३००० वर्षका.
१८१ प्र. प्रत्येक वनस्पतिका „ १०००० वर्षका.
१८२ प्र. अग्नि-तेउकायका „ ३ अहोरात्रिका होता है.

रसबंध.

१८३ प्र. कर्मका रस–शुभ्र और अशुभ्र ऐसे दो प्रकारका होता है. सो हरएक मंद, मंदतर और मंदतम, तैसेही तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम प्रकारसें होता है.

१८४ प्र. शुभ्ररस, गन्नेका जैसा मीठा होता है और अशुभ्र रस नींबके जेसा कडुवा होता है.

१८५ प्र. कषायकी मंदतासें शुभ्ररस–तीव्र, तीव्रतर वा तीव्रतम, और अशुभ्ररस मंद, मंदतर वा मंदतम बांधाजाता है. और कषायकी तीव्रतासें तो शुभ्ररस मंद, मंदतर वा मंदतम, और अशुभ्र

रस तीव्र, तीव्रतर वा तीव्रतम बांधा जाता है. एक ठाणिया, दो ठाणिया, त्रि ठाणिया और चउ ठाणिया रस नी सोही कहाजाता है याने वह अनुक्रमसें शुन्नाशुन्न रसकी तीव्रता दर्शाता है. कषायके अन्नावसें कर्मबंधके रसका अन्नाव होता है.

प्रदेशबंध.

१८६ प्र. अनंता परमाणु निष्पन्न स्कंध कार्मण वर्गणा योग्य होता है. तेसे अनंत स्कंधकी बनी हुइ कर्म वर्गणा होती है तैसी अनंत कर्म वर्गणा प्रतिक्षण (समय समय) जीव ग्रहण करता है.



प्रकरण दूसरा.

उपदेश सार.

१ जीवदया—हरहम्मेशा जयणा पालनी, किसी जीवकों दुःख पीडा हो तैसा कुछभि कार्य कभिभि समुजकर—देखकर करना नहि और करानाभी नहि.

२ जूठ बोलना नहि—क्यों कि तिस्सें दूसरे सामनेवाले मनुष्यकों अपनके उपर अविश्वास आता है; जिस्सें कभी सत्यभी माराजाता है.

३ चोरी करनी नहि—चोरी करनेवाला कभी सुखी नहि होता है. चोरीसें संपादन किया हुवा धन माल घरमें रहेताही नहि, चोरका कोइ विश्वासभी नहि करता. चोर मरण आये बिगरही मरता है याने फांसी वगैरा बुरे हालसें मरता है. चोर भटकती फिरती हरामके माल खानेवाली गैयेंकी तरह असंतोषी होता है.

४ व्यभीचारभी करना नहि—परस्त्रीगमन और वेश्या गमन भाइयोंकों, और परपुरुषादि गमन बा-

इयोंकों अवश्य त्याग देनेही लायक है. ऐसा कर्म लोक विरुद्ध होनेसें निंदापात्र होता है, कुलकों कलंक लगता है और नरकादि दुर्गति प्राप्त होती है.

५ अत्यंत तृष्णा रखनी नहि—अति लोभ दुःखकाही मूल है और लोभ अनेक पापकर्म करानेके लिये जीवकों ललचाके दुर्गतिमें डालता है.

६ क्रोध नहि करना—क्रोध अग्निके समान संतापकारी है. प्रथम आपहीकों संतापता है. और जो सामनेवाला मनुष्य समझदार क्षमावंत नहि हो तो तिस्कोंभी संताप करता है. क्रोधकों टाल देनेका उत्तम उपाय क्षमा, समता वा धैर्यता है.

७ अभिमान करना नहि—जो सख्स अहंकार करते है सो मानहीन होजाकर नीचा दरज्जा पाते है, और जो नम्र रहते है सो उंचे दरज्जेका अधिकारी होता है. कहा है कि जहां लघुता तहां प्रभुता विद्यमान रहती है. कुल, जाति, बल, तप, विद्या लाभ और ठकुराइ आदिका गर्व कभिभि नहि करना.

८ माया कुटिलता करनी नहि—छल, प्रपंच, दगा, दंभ, वक्रता, कपट करके अपनी मगरुरतासें

उलटे रस्तेपर चलनेवाला कभी सुख पाताही नहि. कहानीभी है कि 'दगा किसीका सगा नहि.' कपटि जनकी धर्मक्रिया निष्फल होती है. कपटी मनुष्य मुंहका मीठा मगर दिलका झूठा होता है.

९ लोभको त्याग देना—लोभी मनुष्य कृत्याकृत्य, हिताहित, भक्ष्याभक्ष्य करनेमें विवेकहीन होकर अग्निके समान 'सर्वभक्षक बनता है.

१० राग द्वेष नहि करना—राग द्वेष दोषसें आत्मा मलीन होता है. राग द्वेष दोनुं साथही रहेते है तिन्होकों जितनेके लिये वीतराग प्रभुजीकी सहायता मदद मांगनेकी आवश्यकता है, क्यों कि वह प्रभु सर्वथा राग द्वेष रहित, अनंत शक्तिवंत और अनंत गुणवंत है.

११ क्लेश करना नहि—कलह-क्लेश दुःखकाही मूल है. जहां हरहमेशां क्लेश हुआ करता है वहांसे लक्ष्मी पलायन कर (भाग) जाती है इस लिये क्लेशसें दूर रहेना.

१२ झूठा कलंक नहि देना—किसीकों झूठा कलंक लगा देना उसके समान दुसरा ज्यादा पाप नहि

है. जूठे कलंकसें जीवकों मरण सादृश दुःख होता है जैसा दुःख दूसरे जीवकों देनेमें तत्पर होता है तैसा बलके तिस्सेंज्ञी सोगुना, लाख क्रोम गुना कटुक दुःख देनेवालेकों पर ज्ञवमें ज्ञुक्तना पमता है.

१३ चुगली करनी नहि—चुगलखोर मनुष्य दुर्जन गिना जाता है. चुगली करनेकी बुरी आदतसें क्वचित् अछे ज्ञले मनुष्यज्ञी संकटमें फंस जाते है.

१४ वैज्ञवके वख्त छक जाना नहि—सुख प्राप्त होतेही बिचार करलेना के सुखका साधन धर्मही है, तो तिस्केही सेवना करनी योग्य है. यह समुजकर धर्म सेवन करना.

१५ दुःखके वख्त दीनता करनी नहि—दुःख आनेसे बिचार लेना के दुःखका निदान पाप-दुष्कृत्यही है, तो तिस वख्त पापसें बहोतही मरते रहेना फायदेमंद है.

१६ पिराइ निंदा नहि करनी—निंदाखोर मनुष्य, धर्मी ज्ञाइ बाइयोंकीज्ञी निंदा करता है, तिस्से तिस निंदकका आत्मा अत्यंत मलीन होता है. निंदा करनेवाला मृत्युके शरन होकरकें नारकी होता है.

महान् पातिकी होनेके लिये निंदकको ज्ञानी जनने कर्मचंडाल कहकर बुलाते है.

१७ कहेनी और रहेनी समान रखनी—कहेना कुछ और करना कुछ, यह तो जाहिर ठगाइ और लघुताइ गिनीजाती है. सज्जन जो बोलता है सोही पलता है. और प्रतिज्ञा पल सके तितनाही बोलते है. सज्जन पुरुषो सदाचारवंत होते है, लोक विरुद्ध वर्त्तन तो सर्वथा तज देते है.

१८ झूंठा खोटेका पक्ष नहि खींचना—सत्यासत्यकी परीक्षा करके निश्चय कर सच्चेकाही हम्मेशां पक्ष ग्रहण करना. परीक्षा किये बिगर कदाग्रहके लिये खोटेका पक्ष--तरफदारी खींचना यह आत्मार्थीका लक्षण नहि है.

१९ शुद्ध देवकीही सेवना करनी—राग द्वेष और मोहादि महा दोषसें सर्वथा वर्जित निर्दोष, निष्कलंक, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतराग, परमात्मा (जिस्का नाम चाहे सो हो, मगर गुणमें सर्वोत्कृष्ट हो सो), तिन्होंकाही अनन्य भावसें शरण ग्रहण करना.

२० शुद्ध गुरुकीही सच्चे दिलसें सेवा करनी–आप निर्दोष, वीतराग शासनको सेवने वाले और अन्य आत्मार्थि सज्जनोंकों ऐसाही निर्दोष मार्ग बताने वाले क्षमा, मृदुता, सरलता अने निर्लोभतादिक श्रेष्ठ गुणोकों भजनेवाले भिक्षु, साधु, निर्ग्रंथ, अणगार–मुमुक्षु–श्रमणादिक सार्थक नामसें पिछाने जाते मुनिगणकोंही शुद्ध गुरु बुद्धिसें सेवन करने योग्य है.

२१ शुद्ध सर्वज्ञ कथित धर्मकीही समुझकर सेवा करनी–दुर्गतिसें बचाकर सद्गति प्राप्त करानेवाला, स्याद्वाद अनेकांत मार्ग मध्य शुद्ध श्रद्धा रखकर सेवा करनी· दोष मात्रकों दलन करनेमें समर्थ महाव्रत सेवन करनेरुप प्रथम मुनीमार्ग उसके अभावसें अणुव्रत सेवन करनेरुप दुसरा श्रावक मार्ग, और महाव्रतादि सम्यक् पालनमें असमर्थ होते भी दृढ शासनरागसें शुद्ध मार्ग सेवन करनेवालोका बहोत मान्यपूर्वक सत्यतत्व कथन होनेसें तीसरा संविज्ञ पक्षीय मार्गकों आत्मार्थी सज्जनोंने दृढ आलंबन योगसें जलदी भव समुद्रसें पार करनेवाला समुझ·

कर सेवन करनाही योग्य है.

२२ शुद्ध देवगुरु अने धर्मकी सेवा करने लायक होना चाहिये—(तैसी योग्यता प्राप्त करनी चाहिये.) अयोग्य—योगता रहित मलीन आत्मा शुद्ध देव, गुरु धर्मकी सेवाका अधिकारी नहि है.

२३ आत्माकी मलीनता दूर करनेकों मथन करना—अपने मन वचन और शरीरकों नियममें रखनेसें आत्मा निर्मळ होशकता है.

२४ क्षुद्रता त्याग देनी—नीच मलीन बुद्धि त्याग कर सुबुद्धि धारण कर अंतःकरण निर्मळ करना. गंभीर दिल रखना, तुच्छता करनी नहि, दुसरेके छिद्र तर्फ दुर्लक्ष देकर अपना और दुसरेका हित किस प्रकारसें होय सोही दाने दिलसें विचारना.

२५ मात्र न्यायसेंही धन उपार्जन करकें आजीविका चलालेनी योग्य है.—संसार व्यवहार वा धर्मव्यवहार अच्छीतरांहसें चलानेके लिये न्याय नीतिकोंही अगाडी रखकें योग्य व्यापारद्वारा द्रव्य उपार्जन करना मुनासिब है. न्यायद्रव्यसें मति निर्मळ रहेती है. कहाहै कि-‘ जैसा आहार वैसांही उद-

गार.' अन्यायका परिणाम विपरीत आता है.

२६ स्वन्नाव शीतळ रखना-कमक प्रकृति बहोत दफे नुकसान करती है, गंमी प्रकृतिवाला सुखसें स्वकार्य सिद्ध कर सकता है, और अपने शीतल स्वन्नाव बळसें समस्त जनसमुदायकों अवश्य प्रिय वल्लन्न लगता है.

२७ लोक विरुद्ध कार्य कन्नी करनाही नहि-मांस न्नक्षण, मदिरापान, शीकार, जुगार, चोरी, और व्यन्निचार यह सब महा निंद्यकर्म नन्नय लोक याने यह जन्म और परजन्म विरुद्ध है, तिस्से करके नक्त कार्य अवश्य त्यागदेने लायकही है.

२८ क्रूरता नहि करनी-कगेर दिलसें कोइन्नी पापकर्म करना नहि. नहितो नस्सें नन्नयलोक बिगमते है और निंदापात्र होता है.

२९ परन्नवका मर रखना-बुरे कार्य करनेसें प्राणीकों परन्नवके अंदर नरक तीर्यंचके अनंत दुःख न्नुक्तने पमते है. ऐसा समुफकर तैसे नीच अवतार धारण करने न पमे वैसी पेहेलेसेंही खबरदारी रखनी और अपना वर्त्तन सुधारकर चलना.

३० ठगबाजी करनी नहि- ठग लोगोंकों दुसरे मनुष्योंकी खुसामत करते हुएन्नी हरहम्मेशां अपना कपट बूपानेके लिये दूसरोंका न्नय रखना पमता है. ठगलोग दुसरेकों ठगनेकी इंतेजारीका उपयोग करनेमें आपही बहोत ठगाते है. बिचारे ठगलोक समुऊते नहि है कि हमलोंग धर्मके अन अधिकारी होनेसें हमारी धर्मकरणी कष्ट काया कलेशरुप निकमी होजाती है.

३१ वफिलकी मर्यादा उल्लंघन करनी नहि— वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध और गुणवृद्धकी योग्य दाक्षिण्यता संन्नालनेसें अपना हित जरुर होता है.

३२ उत्तम कुल मर्यादा त्याग देनी नहि—नम्रता रखनी, कोइन्नी एब लगानी नहि. सुज्ञतासें वा स्यानेपनसें बोलना चालना इत्यादि उत्तम नीति रीति आदरनेकेलिये प्रयत्न कियेही करना. मतलबमें इतनाही कहेना काफी है कि कोइन्नी प्रशंसनीय प्रकारसें कुलकी शोन्नामें वृद्धि हो वैसेही कार्य करना.

३३ दयाई स्वन्नाव धारण करना—समस्त प्रा-

णियोंको समान गिनकर किसीका जीव दुःख पावे वैसा करना नहि सब जीवोंकों मित्रके सादृश मान लेनाही लाजीम है.

३४ पक्षापक्षी करनी नहि—सत्यकाही आदर करना. सत्य बाबतमें भेद भाव धरना नहि और शत्रु मित्र समान गिन लेकर मध्यस्थ भावमें स्थित होना.

३५ गुनिजनकों देखकर प्रसन्न होना—यदि आपकों गुन संग्रहनेकी जरुरत हो तो गुनीजनोंको देखकर प्रसन्न रहो. क्यों कि गुन गुनियोंके पासही निवास करते है. गुनिलोगोंका अनादर करनेसें गुन दूर भागजाते है और उनोंका योग्य आदर करनेसें गुन नजदीक आते है.

३६ मोजमें आजाय जैसा वाक्योच्चार करना नहि—जब जरुरत हो तब जरुरत जितनाही ज्ञानीके वचनानुसार बोलनेसें स्व परका हित होता है अन्यथा उन्मत्त भाषणसें तो अवश्य अपना और दूसरेका अहितही होता है.

३७ समस्त अपने कुटुंबकों धर्मचुस्त बनाना

(धर्मचुस्त करनेमें योग्य यत्न—प्रयत्न उपयोगमें लेना.) उपकारी कुटुंबियोंके उपकारका दूसरी रीतिसें बदला देसकते नहि, मगर धर्मके संस्कारी करनेसें उन्हके उपकारका बदला अच्छी तरांहसें पूर्ण कर सकते है, और धर्मके संस्कारी होनेसें वोह सब प्रकारसें अनुकूलवर्ती होते है.

३८ विना बिचार किये कोइभी कार्य करना नहि. साहस कार्य करनेसें कोइवख्त जीव जोखममें झुक जाकर महान् शोकातुर होता है, इसलिये तिस्का अंतका परिणाम बिचार करकेही घटित कार्य करनेमें तत्पर रहेना.

३९ विशेष ज्ञान संग्रह करना—सत्यतत्व जाननेकेलिये जिज्ञासा हो तो अंध क्रियाका त्याग करकें हरएक व्यवहार-क्रियाका परमार्थ समुझकर सत्य—निष्कपट क्रिया करनेके लिये पूर्ण आदर करना.

४० हम्मेशां शिष्टाचार सेवन करना—महान् पुरुषोंने सेवन किया हुवा मार्ग सर्व मान्य होनेसे अवश्य हितकारी होता है, इस सबबसें स्वकपोलकल्पित मार्गकों छोडकर सन्मार्ग सेवन करना. क्यों

कि—' महाजनो येन गतः सपन्थाः '

४१ विनयवृत्ति—नम्रता धारण करनी—सद्गुणी वा सुशील सज्जनोंका उचित विनय करना. सद्गुणी जनोंका कभीभी अनादर करना नहि; क्यों कि विनय सोही समस्त गुणोंका वश्यार्थ प्रयोग है. धर्मका मूलभी विनय है. विनयसेही विद्या फलिभूत होती है. और विनयसेंही अनुक्रम करके सर्व संपत्ति संपादन होती है.

४२ उपकारी जनका उपकार भूल नहिजाना. माता, पिता और मालिकका उपकार अतुल मानाजाता है. वह सबसें धर्मगुरुका उपकार बेहद है. तिन्हका उपकारका बदला पूर्ण करनेका सच्चा उपाय यह है कि तिन्हकों जरुरतके समय धर्ममें मदद देनी ऐसा समझकर वैसी उत्तम तक—मोका सुज्ञजनकों खो देना नहि क्यों कि, गया वख्त फेर हाथ आता नहि.

४३ यथाशक्ति जरुर पर दुःखभंजन करना—दीन, दुःखी, अनाथ जनकों यथा उचित सहाय देकर तिन्होंकों आश्वासन देना. और कुछ न बन सके तो

योग्य वचनसेंज्ञी तिन्होंकों संतोष देना. तिन्होंका जीवात्मा कोइ प्रकारसें दुःखी हो तैसा कुछ करना या शब्दोच्चारज्ञी करना नहि. और तिन्होंकों टिगमगाकर देना, न्नस करते जलदी अपनी शक्ति मुजब दे देना.

४४ कार्यदक्ष होना—अन्यास बलसें कोइज्ञी कार्यमें फिकरमंद नहि होके तिस्कों पार पहोंचानेमें पूर्ण हिम्मतवंत होना. आरंन्न किये हुवे कार्यमें कितनेज्ञी विघ्न आजाये तोज्ञी हाथ धरे हुवे कार्यमें निरूरतापूर्वक अरूग रहकर कार्य सिद्ध करना.

४५ मिथ्यात्व सेवन करना नहि—राग द्वेषसें कलंकित हुवे कुदेवोंका तत्वसें अज्ञ मिथ्या कदाग्रही कुगुरुका और हिंसादि दूषणोंसें सहित कुधर्मका सर्वथा त्याग करना. अज्ञानमय होळी प्रमुख मिथ्या पर्वोंकाज्ञी अवश्य परिहार करना. मिथ्या देव देवीकी मानत नहि करनी. शासन न्नक्त सुरवरोंकी सच्चे दिलसें आस्था रखनी; क्यों कि, आपत्तिके वख्त न्नक्तजनोंकों शासनदेवही सहायन्नूत होते है.

४६ शंका कंखा धारण करनी नहि—सर्वज्ञ वी-

तराग परमात्माके प्रमाणभूत वचनमें कदापि शंका करनी नहि क्योंकि, तिन्हकों सर्वथा दोष रहित होनेसें झूठ बोलनेका कुछ प्रयोजन नहि है, इस्सें निःशंकपणे श्री जैनशासनकी शुद्ध दिलसें सेवा करनी. प्राणांत होनेसेंभी पाखंडी लोगोने फेलाइ हुइ जाळमें फसाना नहि.

४७ धर्म संबंधी फलका संदेह करना नहि—जो साक्षात धर्म कल्पवृक्षका सेवन करके तीर्थंकर गणधर प्रमुख असंख्य मनुष्योंने साक्षात सुखका अनुभव कीआ है सो पवित्र धर्मके अमोघ फलका संदेह निर्बल मनवाले मनुष्य सिवाय दुसरा कौन करेगा? अपितु अन्य कोइभी नहि करेगा.

४८ मिथ्यात्वका परिचय त्यागदेना—' सोबते असर ' यह दृष्टांतसें स्वगुणकी हानी और कदाग्रही विपरीत दृष्टी जनके ज्यादा संगसें आत्माका सहज शत्रुभूत दुर्गुणकी वृद्धि होती है.

४९ मिथ्यात्वीकी स्तुतिभी नहि करनी—इस्की स्तुति करनेसेंभी मिथ्यात्वकीही वृद्धि होती है.

५० तत्वग्राही होना—मध्यस्थ वृत्तिसें सत्य ग-

वेषक होकर सुवर्णकी तरांह परीक्षा पूर्वक शुद्ध तत्व अंगीकार करना.

५१ झोहेरीकी मुवाफिक सुपरीक्षक होना—शुद्ध तत्व स्वीकारते पेहेले झोहेरीकी तरांह अपनी चातुर्यताका जहां तक बने वहांतक पूर्ण उपयोग करना.

५२ तत्वपर पूर्ण श्रद्धा रखनी—श्री सर्वज्ञ प्रभुके फरमाए हुए तत्व वचनोंपर पूर्ण प्रतीति रखनी, किंचितभी चलित नहि होना.

५३ नीच आचारवालेकी सोबत सर्वथा त्याग देनी—नीच संगतिसें हीनपदही प्राप्त होता है. प्रत्यक्ष देखोकि गंगानदीका पवित्र जलभी क्षार समुद्रमें मिल जानेसें क्षाररुप हो जाता है. ऐसा समझकर सत्संग सेवन करनाही मुनासिब है.

५४ धर्म (शास्त्र) श्रवण करनेमें तीव्र रुचि करनी—जैसे कोइ सुखी और चालाक युवान बहोत उत्साहसें देवी गायन नादकों अमृत समान जानकर श्रवण करे तैसें बलकें तिस्सेभी अधिक उत्कंगसें शास्त्र श्रवण करना योग्य है. शास्त्रवाणी श्रवण क-

रनेमें बनी सक्कर—शक्करसेंन्नी ज्यादा मिष्टता पैदा होती है.

५५ धर्मसाधन करनेपर बहोत रुचि रखनी— जैसें कोइ ब्राह्मन जंगल नल्लंघन करके थकित बनकर बेहोश होगया हो और नस्कों बहोतही नूख लगी हो, नस वख्त कोइ सख्स नस्से घेबरका न्नोजन देदे तो बहोतही रुचिदायक हो, तैसें मोक्षार्थीको धर्मसाधन करना रुचिकर होना चाहिये.

५६ देवगुरुका वैयावच्च करनेमें कचाश नहि रखनी चाहिये—जैसें विद्यासाधक प्रमाद रहित विद्या साधनमें तत्पर रहेते है, तैसें शुद्ध देव गुरुका आराधन करनेमें कुशलता रखनी आत्मार्थीओंकों योग्य है.

५७ विनयका स्वरुप समुझकर अरिहंतादिकका निम्न लिखे मुजब आदर रखना. १ न्नक्ति (बाह्य नपचार), २ हृदयप्रेम-बहु मान, ३ सद्गुणोंकी स्तुति, ४ अवगुन--दोषदृष्टिका त्याग करना और ५ बनते तक आशातनाओसें दूर रहेना.

५८ शुद्ध समकित पालना—(मन, वचन और

कायांसें) श्री जिन और जैनमार्ग बिगर समस्त अ-सार है, ऐसा निश्चय करनेसें मनसें, श्री जिनभ-क्तिसें जो बन शके सो करनेवाला दुनियांमें दुसरा कौन समर्थ है, ऐसा कहेनेसें वचनसें, और अनग-पनसें श्री जिनके सिवा अन्य कुदेवकों कबिभी प्र-णाम नहि करनेसें कायासें ऐसें त्रिकरण शुद्धिसें स-म्यक्त्व पालना.

५९ जैनशासनकी प्रभावना करनेमें तत्पर रहेना—पवित्र जैन सिद्धांतका पूर्ण अभ्यास करनेसें भव्य जनोकों धर्मोपदेश देनेसें, दुर्वादीका गर्व मर्दने सें, निमित्त ज्ञानसें, तपोबलसें, विद्यामंत्रसें, अंजन योगसें और काव्य बलसें राजा वगेरांहकों प्रतिबो-धनेमें, जैनशासनकी विजयपताका फरफरानेमें घ-टित वीर्य स्फुरायमान करना.

६० जिस प्रकारसें समकित शुद्ध निर्मळ हो तिस प्रकारका त्वरासें उपयोग करना—शुद्ध देव गु-रुकों यथाविधि वंदन करकें, यथाशक्ति व्रत पच्चख्काण करना. तथा उत्तम तीर्थ सेवा, देवगुरुकी भक्ति प्र-मुख सुकृत ऐसी तरांहसें करना कि जिस्सें अन्य

दर्शनी जनोंभी वह वह सुकृत करणीकी अवश्य अनुमोदना करकें बोध बीज बोकर भवांतरमें सुधर्म फल प्राप्त करनेकों समर्थ होके यावत् मोक्षाधिकारी होवे.

६१ अपराधी परभी क्षमा करनी—अपराधिका भी अहित नहि करना, और बनशके वहांतक अपराधीकोंभी सुधारनेकी-केलवणी देनेकी इच्छा रखनी.

६२ मोक्ष सुखकीही अभिलाषा रखनी—जन्म मरणादि समस्त सांसारिक उपाधि रहित अक्षय सुख संपादन करनेके लिये अहर्निश यत्न करना. देव मनुष्यादिकके सुखोंकोंभी दुःखरुपही जानना.

६३ संसारके दुखसें त्रासवंत होना—यह संसारकों नरक वा कारागृह समान जानकर तिनसें मुक्त होनेका यत्न किये करना.

६४ पीडित जनोंकों बने वहांतक सहायता देनी—द्रव्यसें दुःखी होनेवाले मनुष्योंकों, तथा धर्म कार्यमें सीदाते हुवे सज्जनोंकों यथायोग्य मदद देकर तिन्होंकों घटित तोष देना. तिन्हकी उपेक्षा करके बेदरकार न रहेना. एकभी जीवकों सत्य सर्वज्ञ धर्म

प्राप्त करानेवाला महान् लाभ उपार्जन करता है.

६५ वीतरागके वचन प्रमाण करें—सर्वज्ञ वीतराग परमात्माने तीनों कालके जो जो भाव कहे है वह वह भाव सर्व सत्य है, ऐसी दृढ आस्तावाला मनुष्य उत्तम लक्षणोंसें लक्षित समकित रत्नकों धारन कर सुखी होता है.

६६ ग्रहण किये हुवे व्रत साहसीकतासें पालन करे—सत्य सत्ववंत शूरवीरोंकों लिये हुवे व्रत अखंडतासें पालन करनेमें तत्पर रहेना घटित है. प्राणांत समयेंभभी अंगीकार किये हुए व्रतोंकों खंडन करना मुनासिब नहि है.

६७ अपवादके वख्त जिस प्रकारसें धर्मका संरक्षण हो तिस प्रकारसें ध्यान पूर्वक वर्त्तना. राजा, चोर दुर्भिक्षादिकके सबल कारणके वख्त जिस प्रबंधसें चित्त समाधिवंत रह शके तिस प्रबंध युक्त दीर्घदृष्टिसें स्वव्रत सन्मुख दृष्टि रखकर उचित्त प्रवृति करनी

६८ हरेककार्य प्रसंगमें धर्ममर्यादा याद रखकर चलना—जिस्सें धर्मकों बाध न लगे, धर्म लघुता न

पावे, और स्वपर हित साधनमें खलेल न पहोंचे ऐसी उचित प्रवृत्ति करनी चाहियें.

६ए आत्मा हर एक शरीरमें विद्यमान है- जैसें तिलमें तेल, फूलोंमें खुसबु, दुग्धमें घृत, तैसें प्रत्येक शरीरमें आत्मा रहाहै. सर्वथा शरीर रहित आत्मा सिद्धात्मा कहा जाता है.

७० आत्मा नित्य है—नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देवतारुप चारों गतिमें आत्मत्व सामान्य है.

७१ आत्माकर्त्ता है—अशुद्ध नयसें आत्मा कर्मका कर्त्ता है और शुद्ध नयसें स्वगुणका कर्त्ता है.

७२ आत्माभोक्ता है अशुद्ध नयसें आत्मा कर्मका भोक्ता है और शुद्ध नयसें तो स्वगुणकाही भोक्ता है.

७३ मोक्ष है--समस्त शुभाशुभ कर्मका सर्वथा क्षय होनेसें आत्मा परमात्मा—सिद्धात्मा होकर जो लोकाग्र अजरामर, अचल, निरुपाधिक स्थानकों संप्राप्त होता है सो मोक्ष कहा जाता है.

७४ मोक्षका उपायभी है-सम्यग् ज्ञान (तत्वज्ञान), सम्यक् दर्शन (तत्व दर्शन), और स-

म्यग् चारित्र (तत्व रमण) यह मोक्ष प्राप्तिके अ-वंध्य अमोघ उपाय है.

७५ सबके साथ मैत्रीभाव रखना—सर्व जीवों कों मित्रही जान्ना, किसीके साथ शत्रुता धारण क-रना नहि. सबमें जीवत्व समान है, सर्व जीव जी-नेंकी इच्छा रखते है, सुख दुःख समय मित्रवत् स-मभागी होना द्वेष इर्ष्या या स्वार्थबुद्धिसें किसीका भी कार्य बिगाडना नहि.

७६ पापी, निर्दय, कठोर परिणामवाले प्राणी परभी द्वेषभाव धरना नहि—तैसे दुर्भव्य वा अभव्य जीवके साथ प्रीति वा द्वेष रखना नहि. मध्यस्थ रहकर चिंतवन करना कि वो बिचारे निबिड कर्मके वश होकर तैसा वर्त्तन करते है.

७७ बुद्धिवंत होकर तत्वका विचार करना—में औसी स्थितिवंत क्यों हुवा ? मेरेकों कैसा सुख अभिष्ट है ? वो कैसें मिल शके ? मेरेकों सुखमें अंतराय कौन करता है ? वह वह अंतरायको में किस प्रकार-सें दूर कर शकुं ? वगैरां: वगैरां:

७८ मानवदेह प्राप्त करके बन शके वैसे सुव्रत

धारण करे. बोध प्राप्त कियेका यही सार है कि असार और अनित्य देहमेंसें सार व्रत धारण कर सत्य और सनातन धर्म साधना.

७९ लक्ष्मी प्राप्त करकें सुपात्र दान दे, सदुपयोग करे—लक्ष्मीका चंचल स्वभाव जानकर विवेकसें पात्र-सुपात्र दान देना, सो असा समुझकर देना कि 'हाथसें करेंगे सोही साथ आयगा' 'जैसा देवेंगे तैसाही पावेंगे.'

८० सत्य और प्रिय वचन मुंहकी शोभा है—जिस करकें दूसरेका हित हो वैसा मीठा—मधुर भाषण करना. कठोर भाषण कदापि नहि करना सो यह समूझकर नहि करना कि—'वचने का दरिद्रता'

८१ जितना बन शके तितना जीवहिंसासें दुर रहेना—दुःख, दुर्भाग्य, बीमारी वगैरां प्रकट हिंसाके ही फल समूझ सुज्ञजन प्रमादसें पिराये प्राण अपहरणरुप हिंसासें दूर रहनेके लिये बने वहांतक प्रयत्न करे.

८२ जितना बने तितना असत्यसें दूर रहेना. मूकपन, बोबडापन, मुखपाकादिक रोग वेदना वगैरां

प्रकट असत्य भाषणकेही फल समुझकर सुज्ञजन असत्यका त्याग करदेवे.

७३ जितना बन शके तितना अदत्त—चोरीसें दूर रहेना. 'दगा किसीका सगा नहि' असा समझकर तथा राजदंड भय, निर्धनता, कृपणतादिक प्रकट चोरीके फळ जानकर समजदार लोगोंको बने वहांतक अनीतिसें दूर रहेनाही दुरस्त है.

७४ मैथुन क्रीडा—पशुवृत्तिका बने वहांतक त्याग कर विरक्त दशा धारण कर लेनी धातुक्षय, क्षय रोग, चांदी वगैरां अनेक दुःखके भोग होनेरुप प्रकट कामक्रीडाके फल समझकर तथा ज्ञानीके वचन मुजब बहुतसे जीवोंका नाश होनेका कारण जानकर सत्य सुखार्थीजन बनशके तितना मैथुन परित्याग कर संतोष धार लेवे.

७५ जितना बनशके तितना परिग्रहका प्रमाण कम करदेना—मोहममत्वको बढानेहारा धनधान्यादिक नव प्रकारके परिग्रह बनते तक घटा देना. सूभुम, ब्रह्मदत्त प्रमुखकी परिग्रहकी बहोत ममतासें दुर्दशा हुइ बिचारकर स्याने लोग अर्थको अनर्थकारी

समूझकर घटित संतोष धारणकर लेवे.

८६ निर्ग्रंथ मुनि महाव्रतके अधिकारी है–हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन, परिग्रह, यह पांचोंका सर्वथा मन वचन और कायासें करना कराना और अनुमोदन आश्री त्याग करकें वो महाव्रतोंकों शूरवीर होकर पालन करनेवाले निर्ग्रंथ अणगारके नामसें पहेचाने जाते है.

८७ अणुव्रत धारक श्रावक कहेजाते है–स्थूल हिंसादिकका यथाशक्ति संकल्प पूर्वक त्याग करनेवाला श्रावक कहाजाता है.

८८ रात्रिभोजन महान् पापका कारण है–पवित्र जैनदर्शनमें साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका मात्रकों रात्रिभोजन सर्वथा निषेध है. अन्य दर्शनमेंभी रात्रिमें अन्न लेना मांस बराबर और पानी पीना रुधिर बराबर कहा है. ऐसा समूझकर सुज्ञ मनुष्योंकों रात्रिभोजन छोड देनाही लाजीम है. रात्रिभोजन करनेवालेकों सांप, चमगीदड, घूघू, छपकली प्रमुख नीच अवतार लेने पडते है. और भोजनमें क्वचित् विषजंतु आजानेसें विविध जातिके व्याधि

विकार पैदा होतेहै. कभी मर जावे तो दुर्गतिमें जाना पमता है.

ए दूसरेभी अभक्षोंका त्याग करना—दो रात्रिके बादका दहीं, तीन रात्रि व्यतीत हुवे बादकी गंब, कच्चा गोरस दूध, दहीं, और गबके साथ मुंग, उमद, अरहर, चिने, इत्यादि छिदल खाना. कच्चा निमक, तिल, खसखस, तुछ फल, अनजाने फल, दिनके उदय सिवा भोजन करना, संध्याकी संधिके वख्त भोजन करना, अरूके फलका और बिगर धूप बताए हुवे आचार, गतदिनका पकाया हुवा भोजन, विषग्रहण, ओले, बरफ वगैरां जो जो प्रसिद्ध अभक्ष (नहि खाने लायक) है वह वह सर्व पदार्थ सर्वथा त्याग देने चाहिये. बेंगन, पीलु, वमकेफल, सहेत, मख्खन आदिभी सब अभक्ष समूझकर वर्जित करना सो बहोतही फायदेमंद है.

ए० अनंतकायका भक्षणभी त्याग देना—अदक, मूली, गाजर, पिंम, पिंमालु, सूरन, वगैरां जमिकंद, तथा बहोतही कोमल फल वा पत्र पत्ति, थेग, नीमगिलोय, मोथ प्रमुख, किंवा नये उगते हुवे अंकुर

कुंपल वगैरांमें अनंत जीवोंकी उत्पत्ति जानकर तिन्होंकी हिंसासें मरकर तिन्होंका त्याग करना.

८१ तीन गुणव्रत धारण करना—उपर कहे हुवे अणुव्रतकी पुष्टिके लीये दिग् विरमणव्रत १, भोगो पभोग विरमणव्रत २, अनर्थदंड विरमणव्रत रुप गुणव्रत धारण करना. पहीले गुणव्रतमें मर्यादा की हुइ भूमिके बहार जाना नहि. दूसरेमें महा पाप वाले १५ कर्मादानका व्यापार बंध कर देना, तथा चौदह नियम धारन करना. और तीसरेमें दूसरेकों पापोपदेश नहि देना. पापकारी उपकरण कोइभी मंगे तो नहि देना नाटक प्रेक्षणा नही करना.

८२ चार शिक्षाव्रत सेवन करना—सामायिक (संकल्प पूर्वक अमुक वख्त समता भाव सेवन करण रुप) १, देशावगासीक (दीग्वीरमण व्रतका संक्षेप करण रुप) २, पौषध (आहार, शरीरसत्कार मैथुनक्रीडा तथा अन्य पाप व्यापारका सर्वथा वा अंशसें त्यागरुप) ३, अतिथि संविभाग (साधु, साध्वीकों दान देकर भोजन करणरुप) ४, यह चारों शिक्षाव्रत सुश्रावक श्राविकाओने मुल गुणोंकी पुष्टि

खातर अभ्यासरुपसें अवश्य सेवन करने लायक है.

९३ ग्रहण कियेहुवे व्रतोंकों यथार्थ पालन करे लक्ष्मी, यौवन और जीवितकों अस्थिर जानकर तिन्होंकों उत्तम व्रतसें सफल करनेकेलिये सज्जन जन दृढ निश्चय करे, और प्राणांत समयभी ग्रहण करे हुवे व्रत खंडित न करे.

९४ पहिले व्रतका स्वरुप जानकर अंगिकार करे– व्रतका स्वरुप समुझकर तिस्से यथाविधि पालन करनेसें यथार्थ फल प्राप्त कर सकें.

९५ व्रतकी तुलना करलेनी–अंगीकार करने योग्य व्रतका प्रथम अच्छी तरांहसें अभ्यास कर पिछे तिसका पच्चख्काण करना.

९६ अभ्यासकों कुछ असाध्य नहि है–अभ्यासके बलसें प्राणी पूर्णताकों प्राप्त कर शकता है, इस लिये अभ्यास कियेही करना.

९७ सावधानीसें मोक्ष क्रिया साधनी–शास्त्र कथन मुजब मोक्षगमन योग्य सत्क्रिया साधते हुवे 'तैल पात्रधर' (संपूर्न तैलका पात्र लेकर चलनेवाले)

तथा ' राधावेध साधनेवाले ' की तरांह सावध रहेना किंचित्‌भी गफलत करनी नहि. विद्या मंत्रसाधककी तरांह अप्रमत होकर रहेना.

ए८ सुख दुःखमें सिंह वृत्ति भजनी—धारन करनी—सुख दुःखके वख्तमें हर्ष शोककी बेदरकारी रखकर कैसें कारणोसें वह सुख दुःख पैदा हुवे है, सो तपास कर अशुभ कर्मसें डरकर चलना और बने वहांतक शुभ कर्म-सुकृत समाचरना.

एए श्वानवृत्ति सेवन करनी नहि—जैसे कूतरे पथ्थर मारने वालेकों काटना छोडकर पत्थरकों काटने दोडता है, तैसे अज्ञानी अविवेकी जनभी सुख दुःख समयमें सीधा बिचार करना छोडकर उलटा बिचार कर हर्ष खेद धारणकर कुत्तेकी तरांह दुःखपात्र होता है. मगर जो समजदार है वो तो उभय समयमेंभी समानभाव धारण करते है.

प्रकरण तीसरा.

सद्‌गुरुसें सुविनीत शिष्यके प्रश्न और तिसका अत्यंत संक्षेप सारभूत समाधान.

१ प्र. हे प्रभु ! प्रथम परमार्थ दृष्टि प्राणिकों आदरन योग्य क्या है ?

उ. सद्‌गुरुका वचन (यथार्थ तत्त्वदर्शी गुरुके वचनपर पूर्ण विश्वास रखना.)

२ प्र. हे प्रभु ! परिहरने-त्याग करने योग्य क्या है

उ. अकार्य हिंसादि अठारह पापस्थानक अवश्य त्याग देनेही योग्य है.

३ प्र. हे प्रभु ! गुरु कैसे होने चाहिये ?

उ. तत्वज्ञानी और तत्त्वोपदेशक स्वपरका हित करनेमें तत्पर हो सोही गुरु है.

४ प्र. हे प्रभु ! विद्वानकों ताकीदसें क्या करना मुनासिब है ?

उ. चार गतिमें परिभ्रमण होता है सो निवारण करना योग्य है.

५ प्र. हे प्रभु ! मोक्ष महावृक्षका अवंध्य (सच्चा) बीज कोनसा ?

उ. सम्यग्ज्ञान (तत्वज्ञान) के साथ सच्ची दंभ रहित क्रियाका सेवन करना सो मोक्ष महावृक्षका बीज है.

६ प्र. हे प्रभु ! परभव गमन करते वख्त जीवको संबल (रस्तेमे खानेका खोराक) क्या है ?

उ. दान, शील, तप और भावनारुप केवली भाषित धर्म.

७ प्र. हे प्रभु ! इस दुनियांमें सच्चा पवित्र कौन है ?

उ. जिसका मन पवित्र निर्दोष निर्विकारी वर्त्तता है सो पवित्र है.

८ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें सच्चा पंडित कौन है ?

उ. जिसको सद्विवेक जाग्रत हुआ है. जो सत्य-काही पक्ष करता है सोही सच्चा पंडित है.

९ प्र. हे प्रभु ! दुनियामें सच्चा झहर क्या है ?

उ. सदगुरुकी अवज्ञा आशातना, हेलना, निंदा, हिंसा करनी सोही खरा झहर है.

१० प्र. हे प्रभु ! मनुष्य जन्म मिलनेका वास्तविक

सार्थक क्या है ?

उ. स्व परहित साध लेना, अपना और पिराया कल्याण करनेमें तत्पर रहेना सो मानव भव प्राप्तिका सार्थक है.

११ प्र. हे प्रभु ! मदिरा (दारु) की तरांहसें जीवकों मूर्छित करनेवाला कौन है ?

उ. स्नेह—राग (पर वस्तु—जड पदार्थमें अत्यंत आशक्ति) है.

१२ प्र. हे प्रभु ! चोरोंकी तरांह अपनां सर्वस्व हरलेनेवाला कौन है ?

उ. शब्द, रुप, रस, गंध, और स्पर्श यह पांचों इंद्रियके विषय सोही अपना सब हरलेनेहारे है.

१३ प्र. हे प्रभु ! संसाररुप विषवल्लीका मूल (निदान) कौनसा है ?

उ. तृष्णा—विषयतृष्णा—परिग्रह तृष्णा—यशमान तृष्णा वगैरः संसार विषवल्लीका मूल है.

१४ प्र. दुनियांमें सच्चा शत्रु कोन ?

उ. प्रभुके पवित्र वचनसें विरुद्ध वर्त्तनरुप प्रमाद कट्टा दुश्मन है.

१५ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें काहेसें प्राणी थर थर कांपते है ?

उ. मरण भयसें कांपते है.

१६ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें खास अंधा कौन है ?

उ. रागी–गुण दोषकों नहि देखनेवाला. अंधेकी तरांह अहित आचरनेहारे खास अंध है.

१७ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें सच्चा शुरवीर कौन ?

उ. जिस्कों स्त्रीके लोचनबाण पीडा नहि कर शकते है सो वीर है.

१८ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें कर्णपुटसें पीने लायक कौनसा अमृत है ?

उ. सत्य, सर्वज्ञ उपदेशामृत (शांत रसदायी संतोंका उपदेशामृत) कान रुप पात्रके मारफत पीने योग्य है.

१९ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें प्रभुताका मुल निदान क्या है ?

उ. अदीनवृत्ति–किसीकी जूंठी खुसामद नहि करनी सो निर्लोभता प्रभुताका मूल कारण है.

२० प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें गहनमें गहन (अत्यंत

ज्ञा) क्या है ?

उ. स्त्रीओंके चरित्र (वर्त्तन-आचरण) किसीकी भी कल्पनामें नहि आते है इस्से अत्यंत गहन है.

२१ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें सच्चा चतुर श्याना हिम्मते बहादुर कौन है ?

उ. जो स्त्रीके चरित्रोंसें नहि ठगाया हो, तिस्के फंदेमें न फसाया हो सोही चतुर है.

२२ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें सच्चा दारिद्र्य दुःख कौनसा है ?

उ. असंतोषही सच्चा दारिद्र्य दुःख है.

२३ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें सच्ची लघुताइ कौनसी है?

उ. दूसरेके पास जाकर याचना करनी सो दीनता—स्पृहा—पराशा रखनी सोही लघुताइ है.

२४ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमे सच्चा जीवित कौनसा ?

उ. दोष कलंक रहित जिस्का जीवन गुजरा उस्काही जीवित सफल है.

२५ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमे सच्ची जडता कौनसी ?

उ. शरीर बल, तथा बुद्धिबल होने परभी अभ्यास नहि करना सोही जडता है.

२६ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें वास्तविक जाग्रत किस्कों कहा जावे ?

उ. विवेकी, जिन्होंने तत्वज्ञान, तत्वदर्शन और तत्वरमण प्रकट हुवे है सो सदैव जाग्रतमान है.

२७ प्र. हे प्रभु ! दुनियामें सच्ची निद्रा कोनसी ?

उ. जीकी अज्ञानता—अविवेकताही सच्ची निद्राहै

२८ प्र. हे प्रभु ! कमलके पत्रपर ठहरेहुवे जलबिंदुके सादृश चंचल—चपल क्या क्या है ?

उ. यौवन, लक्ष्मी, और आयुष्य यह सर्व चंचल—अस्थिर नाशवंत है.

२९ प्र. हे प्रभु ! चंद्रके किरण जैसे शीतल स्वभावी दुनियामें कौन है ?

उ. केवल सज्जनही चंद्रके समान शीतल वचनामृतकों श्रावित करनेहारे है.

३० प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें नरक जैसा दुःख किसकी अंदर है ?

उ. परवशता—पराधीनता—परोपजीवितामें नरकवत् दुःख है.

३१ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें सच्चा सुख किस वस्तुमें है?

उ. निःसंगता, निस्पृहता, निर्लेपता, सर्वथा वैराग्य उदासीनतामें परम सुख है.

३२ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें सच्चा सत्य क्या है ?

उ. जिस्सें जीवका हित हो—अहित न हो, वा अहित होता अटकजाय ऐसाही वचन तत्वसें सत्य है.

३३ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें जीवको प्रियमें प्रिय चीज कौनसी है ?

उ. अपना प्राण—जीवित सबसें प्रिय है.

३४ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें सबसें अवल दान कौनसा है ?

उ. इच्छा रहित देना—परमार्थ भावसें समर्पण करना सो.

३५ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें सच्चा मित्र कौन है ?

उ. जो पापसें—पापकर्मसें निवर्त्तन कराके ठिकानेपर लावे, और निःस्वार्थी परोपकारशील हो सो सच्चा मित्र है.

३६ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें सच्चा भूषण क्या ?

उ. शील- सद्गुण—सदाचार सोही मनुष्यका सच्चा भूषण है. याके शिवा दूसरे सुवर्ण भूषण दू-

षण रुप है.

३७ प्र. हे प्रन्तु ! दुनियांमें अव्वल दरज्जेका मुखमंडन क्या है ?

उ. सत्य—अवितथ—अविरुद्ध वचन बोलना सोही मुखका सच्चा आन्नूषण है.

३८ प्र. हे प्रन्तु ! दुनियांमें वास्तविक अनर्थकारी क्या ?

उ. अनिश्चित—अस्थिर और धर्म बिगरका मन सोही अनर्थकारी है.

३९ प्र, हे प्रन्तु ! दुनियांमें सबसें आला सुख देनेवाली वस्तु क्या है ?

उ. मैत्री, समस्त जगत् जंतुओंके साथ मैत्रीन्नाव रखना.

४० प्र. हे प्रन्तु ! दुनियांमें सब आपदाओंकों दलन करनेके लीये कौन समर्थ है ?

उ. सर्व विरति—पंच महाव्रत धारण करना और रात्रि न्नोजनका सर्वथा त्याग करना.

४१ प्र. हे प्रन्तु ! इस दुनियांमें सच्चा अंध कौन है ?

उ. जो जानबुझकर अकार्य सेवन करता है सो, वा पाप प्रिय पामरजन अत्यंत अंध है.

४२ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें खरा बधिर कौन ?

उ. जो औसर प्राप्त होजानेपरभी हित वचनको सुनता-आदरता नहि है सो.

४३ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें अव्वल दरज्जेका मूक कौन ?

उ. जो औसर हाजर हुवेभी प्रिय वचन बोल शकता नहि.

४४ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें वास्तविक मरणतुल्य क्या?

उ. मूर्खपन—मूर्खको कदम दर कदमपें क्लेश—खेद होता है, इसीलिये यह मरण सादृश बडा दुःख है.

४५ प्र हे प्रभु ! दुनियांमें सबसे अमूल्य क्या है ?

उ. जो यथा औसर—सच्ची तकपें देनेमें आवे सो महान् लाभ देता है, इसीलिये औसरपर जरुरतवाली चीज देना. जैसें भूखेकों अन्न, प्यासेकों पानी, नंगेकों कपडा.

४६ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें मरतेतक क्या खटकता—पीडता है ?

उ. जो छुपी रीतिसें पाप सेवन किया हो सो मरन तक खटकता है.

४७ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें कौनसी कौनसी बाबतमें

अवश्य यत्न करना चाहिये ?

उ. विद्याभ्यास, सदौषध, और दानकी अंदर विवेकपूर्वक यत्न करना चाहिये.

४८ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें कौनसी कौनसी बाबते अवगणना करने योग्य है.

उ. खल जन, पर दारा, और परधन अवश्य वर्जित करने योग्य है.

४९ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें कौनसी बाबत रात दिन सदा चिंतवन करने योग्य है ?

उ. संसारकी असारता—अनित्यता निरंतर चिंतवन योग्य है परंतु महा मोहकों उत्पन्न करनेवाली प्रमदा स्त्री चिंतवन करने योग्य नहि है. तिस्के रंग रुपसें रंजित होना नहि, लेकिन तिस्कों विकार कारिणी जानकर त्यागदेनी योग्य है.

५० प्र. हे प्रभु! कौनसी कौनसी बाबते विशेष प्रिय वल्लभ गिनकर आदरनी ?

उ. करुणा, दुःखी जीवोंपर अनुकंपा, दाक्षिण्यता और सब जीवोंकेपर समानभाव—मैत्रीभाव याने "आत्मवत् सर्व भूतेषु" असी बुद्धि रखनी.

५१ प्र. हे प्रभु ! प्राणांत कष्ट आजानेपरभी किस किसके वश्य नहि होना.

उ. मूर्ख (अज्ञानी-अविवेकी), दीनता, गर्व और कृतघ्नके वश नहि होना.

५२ प्र. हे प्रभु ! जगत्में पूजने योग्य कौन है ?

उ. सदाचारी, शुद्ध व्रतधारी-निर्मल चरित्रवंत जन पूजने योग्य है.

५३ प्र. हे प्रभु ! जगत्में कमनसीब कौन है ?

उ. भग्नव्रती-भग्न परिणामी-खंडित शीलवाला बेशक कम नसीबदार है.

५४ प्र. हे प्रभु ! जगत्में कौन वश कर शकता है ? जन प्रिय कौन होशकता है ?

उ. हित मित (सत्य) भाषी और सहनशील-क्षमावंत हो सो जगत्मान्य और प्रीतिपात्र हो सकता है.

५५ प्र. हे प्रभु ! देवभी कैसे मनुष्यकों नम्रतासें नमन करते है ?

उ. दया प्राधान्य-जिन्के हृदयमें उत्तम दयाधर्म स्थित हो तिन्को देवभी नमन करते है.

५६ प्र. हे प्रभु ! कौनसी बाबतसें सुबुद्धि जीवोंकों उद्वेग धारण करना योग्य है ?

उ. यह चार गतिरुप भवाटवीसेंही उद्वेग निर्वेद धारण करना योग्य है.

५७ प्र. हे प्रभु ! प्राणी सहजहीमें किस्के तावे हो जाते है ?

उ. सत्य और प्रियभाषी तथा विनीत—अत्यंत नम्र मनुष्य के तावे हो जाते है.

५८ प्र. हे प्रभु ! इष्ट (प्रत्यक्ष) और अदृष्ट (परोक्ष) अर्थके लाभ निमित्त मनुष्यकों कौनसे मार्गमें स्थित होना ?

उ. न्याय, नीति (प्रमाणिकता) केही मार्गमें स्थिरता करनी, अन्याय, अनीतिका मार्ग कदापि हाथ धरणा नहीं.

५९ प्र. हे प्रभु ! बिजलीकी तरांह चपल वस्तुए कौनसी कौनसी है ?

उ. दुर्जन जनकी प्रीति और स्त्री जाति चपलावत् चपल है.

६० प्र. हे प्रभु ! यह कलिकालमें भी मेरु सादृश

धीर कौन है ?

उ. सज्जन साधु संत पुरुषो मंदराचलवत् धैर्य-वंत है.

६१ प्र. हे प्रभु ! धनवंत है तदपि शोच करने योग्य कौन है ?

उ. कृपणता, जैसे मंमण शेठ कंजूस था वैसा धनवंत होतो शोच करनेही योग्य है.

६२ प्र. हे प्रभु ! अल्पधन–गरीब हो तथापि प्रशंसाके योग्य क्या है ?

उ. उदारता, मननी मोटाइ (पुणीया श्रावककी तरांह) प्रशंसा पात्र है.

६३ प्र. हे प्रभु ! प्रभुता ठकुराइ विद्यमान होनेपर भी कौनसी वस्तु प्रशंसनीय है ?

उ. सहनशीलता, क्षमा, गम खानी सो (अभय कुमारकी तरांह),

६४ प्र. हे प्रभु ! चिंतामनी रत्नके समान चार पदार्थ कौनसे कौनसे है ?

उ. दान, ज्ञान, शौर्य और धन यह चतुर्भद्र गीने जाते है.

६५ प्र. हे प्रभु ! अमूल्य दान कौनसा ? कैसी तरांह ?

उ. प्रिय मिष्ट वचन सहित जो देनेमें आवे सो और विवेकसह दिया गया हो सो दान अमूल्य है.

६६ प्र. हे प्रभु ! अमूल्य (दुर्लभ) ज्ञान क्या है ? और कैसी तरांह ?

उ. गर्व रहित तत्वातत्वका बोध होना सो, और जो ज्ञानसें आत्मामें आये हुवे (आकर निवास किये हुवे) गर्व वगैरां दोषोकों दूर कर शके सो अमूल्य ज्ञान है.

६७ प्र. हे प्रभु ! अमूल्य (दुर्लभ) शौर्य कौनसा ?

उ. क्षमायुक्त हो सो—जो शरीरादिककी शक्ति पाकर परोपकार कीया जाय किसी दुःखी जनका संरक्षण कीया जाय सोही शक्ति प्रमाण है. जिस सख्ससें दीन दुःखी पीडा पाते हो उन्का उद्धार कर शके सो अमूल्य शौर्य है.

६८ प्र. हे प्रभु ! अमूल्य (दुर्लभ) धन कौनसा कहा जाय ?

उ. जो दानसें सार्थक कीया जाय, धर्मकी प्र-

भावना—उन्नति हो सोही धन हिसाबमें गीनाता है.
बाकीका तो केवल भाररुप ही गीन लेना चाहीए.
६९ प्र. हे प्रभु! योग इतने क्या? तिस्का व्युत्प-
त्यर्थ कैसा होय?

उ. मोक्षेण योजनाद् योगः मोक्षके साथ जोड
देनेसें योग सर्व सदाचाररुप कहा जाय.
७० प्र. हे प्रभु! योगके कितने अंग है? और वह
कौनसे कौनसे है?

उ. अष्टांग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्र-
त्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि यह आठ यो-
गके अंग है.
७१ प्र. हे प्रभु! योग साधनका अधिकारी कौन हो-
शकता है?

उ. मंदकषायी, मध्यस्थ, मिताहारी, अल्पनिद्रा
वंत, सदाचारी और सर्वदा सुप्रसन्न हो सोही योग
साधन करनेका योग्य अधिकारी होता है
७२ प्र. हे प्रभु! अष्टांग योगसें क्या फायदा होताहै?
उ. अणिमा, गरिमा, लघिमादिक बडी सिद्धियें
प्रकट होकर यावत् स्वर्ग और मोक्षके सुख स्वा-

धीन होते है.

७३ प्र. संयम सो क्या ? और उन्से क्या फायदा हो?

उ. मन वचन और कायाकी गुप्तिसें इंद्रिय कषाय और अव्रतोंका रोध कर आत्माका निग्रह करना सो संयम जान्ना–तिस संयमसें नये कर्म बंधन होने अटक जाते है.

७४ प्र. पूर्व संचित कर्मक्षयका साधन क्या है ?

उ. विवेकपूर्वक समतासें सेवन कराता हुवा बारह प्रकारका तप निकाचित कर्मोंक्षी क्षय कर डालता है, और वो तप बलसें अनेक लब्धिये प्रकट होती है सो तप कर्म क्षयका साधन है.

७५ प्र. मोक्षका अधिकारी कौन कहाजाय ?

उ. समभाव भावित आत्मा (जाति लिंगकी अपेक्षा बिगर) यतः समभावभाविअप्पा लहइमुक्खं न संदेहो–अर्थात् चाहेसो समभावि–मध्यस्थ–गुणग्राही–ज्ञानी पुरुषार्थवंत अवश्य मोक्ष प्राप्त कर शकता है. याने ऐसे पुरुषही मोक्षके अधिकारी होते है.



प्रकरण चौथा.

सर्वज्ञ कथित तत्व रहस्य.

१ जीवदया (जयणा) हम्मेशां पालनी चाहिये.

चलतें, बैठतें, उठतें, सोतें, खातें, पीतें या बोलतें याने यह हरएक प्रसंगमें प्रमादसें पिराये प्राण जोखममें नहि आजावे तैसे उपयोग रखकर चलना. सूक्ष्म जंतुओंका जिस्से संहार होजाय, तैसा खजुरीका झाडु वगैरां कचरा निकालनेके लिये कबीभी वपराशमें नहि लेना. पानीभी छानकर पीना. छाना हुवा जलभी ज्यादा नहि ढोलना. जीवदयाके खातिर रात्रिभोजन नहि करना. कंदमूल भक्षण वर्जित करदेना. जीवदयाके खातिर जहां तहां अग्नि नहि सिलगानेका ध्यानमें रखना; क्योंकि अपने प्राणहीके समान सब जीवोंको अपने अपने प्राण वल्लभ है, तो तिन्हके प्रिय प्राणोकी कीम्मत बुझकर स्वछंदपना छोडकर जैसें उन्हुंका बचाव होशके तैसें कार्य करनेमें प्रयत्न करना ओर याद रखना के सर्व अभक्ष्य–मद्य मांसादिके भक्षणसें क्षणिक रसकी

लालचके लीए असंख्य जीवोंको कीमती जानकी ख्वारी होती है, तिन्हकें नाहक संहारसें महान् पाप होनेसें जगत्में महा रोगादि उपद्रव उद्भवते है तिन्हा भोग होपडता है और प्रांत-अंतमें नरकादि घोर दुःखके भागीदार होना पडता है.

७ निरंतर इंद्रिय वर्गका दमन करना.

हरेक इंद्रियका पतंगजंतु, भौंरा, मत्स्य, हाथी और हिरनकी तरांह दुरुपयोग करना छोडकर संत जनोंकी तरांह इंद्रियोंका सदुपयोग करके हरेकका सार्थक्य करनेके लीए खंत रखनी चाहिये. एक एक छूट्टी कीहुइ इंद्रिय तोफानी घोडेकी तरांह मालिककों विषम मार्गमें लेजाकर ख्वार करती है, तो पांचोंको छूट्टी रखनेवाला दीन अनाथ जनका क्या हाल होवे ? इसी लिए इंद्रियोंके तांबेदार न बनकर उन्होकों वश्यकर स्वकार्य साधनमें उचित रीति मुजब प्रवर्त्तावनी चाहिये. किंपाक तुल्य विषयरस समझकर तिस्की लालच छोडकर संतदर्शन, संतसेवा, संत स्तुति, संत वचन श्रवणादिसें वो इंद्रियोंका सा-

र्धक्य करनेके लिए उद्युक्त रहकर प्रतिदिन स्वहित साधनेकुं तत्पर रहना उचित है.

३ सत्य वचनही बोलना.

धर्मका रहस्यभूत ऐसा, अन्यकों हितकारी तथा परिमित जरुर जितनाही भाषण औसर उचित करना, सोही स्वपरकों हित कल्याणकारी है. क्रोधादि कषायके परवश होकर वा भयसें या हांसीके खातिर अज्ञजन असत्य बोलकर आप अपराधी होते है, सो खास ख्यालमें रखकर तैसे वखतमें हिम्मत धारण कर यह महान् दोष सेवन नहि करना. सत्यसें युधिष्ठिर, धर्मराजाकी गिन्तीमें गिनाये गये, ऐसा जानकर असत्य बोलनेकी या प्रयोजन बिगर बहोत बोलनेकी आदत रोककर हितमितभाषी बनजाना, किसीकों अप्रीति—खेद पैदा होय तैसी बोलनेकी आदत यत्नसें रोकदेनी.

४ शील कबीभी छोडना नहि.

ब्रह्मचर्य व्रत या सदाचारके नियमे चाहे वैसें संकटमें भी लोप देनेकी इच्छा नहि करना. सत्यवंत

अपने व्रतोंकों प्राणोंकी समान गिनते है, और प्राणांत तलक तिन्हकी खंम्डना नहि करते है याने अखंम्डव्रती रहेते है, सोही सच्चे शुरविर कहे जाते है.

५ कुशील जनके संग निवास करना नहि.

तैसे हलके आचारवालेके साथ रहेनेसें 'सोबते असर' यह कहेनावत मुजब अपने अच्छे आचारोंकों अवश्य धोखा—धक्का पहुंचता है और लोकापवादभी आता है इसीलिये लोकापवाद भीरुजनोंकों तैसे भ्रष्टाचारीयोंकी सोबत सर्वथा त्याग देनीही योग्य है. सोबत करनेकी चाहना हो तो कल्पवृक्षके समान शीतल छांके देनेवाले संत पुरुषकीही सोबत करो, जिस्सें सब संसारका ताप टालकर तुम परम शांत रस चाखनेकों भाग्यशाली बन शको.

६ गुरु वचन कदापि लोपना नहि.

एकांत हितकारी—सत्य—निर्दोष मार्गकोंही सदा सेवन करनेवाले और सत्य मार्गकों दिखानेवाले सद्गुरुका हित वचन कदापि लोपन करना नहि.

किन्तु प्राणांत तक तद्वत् वर्त्तन करनेकों प्रयत्न करना यही शास्त्रका सारांश है. तैसे सद्गुरुकी आज्ञा पूर्वकही सब धर्म कर्म—कृत्य सफल है. अन्यथा निष्फल कहाजाता है. इस लिये सदा सद्गुरुका आशय समझकर तद्वत् वर्त्तनमें उद्युक्त रहेना यही सुविनीत शिष्यका शुद्ध लक्षण है.

७ (अ) चपलता—अजयणासें चलना नहि.

अजयणासें चलनेके सबबसें अनेकशः स्खलना होनेके उपरांत अनेक जीवोंका उपघात, और किंचित् अपनाभी घात होनेका संभव है. इस लिये चपलता छोडकर समतासें चलना, जिस्सें स्व परकी रक्षा पूर्वक आत्माका हित साध शके.

(ब) उद्भट वेष पहेरना नहि.

अति उद्भट वेष—पोषाक धारण करनेसें याने स्वछंदपना आदरनेसें लोगोंके भीतर हांसी होती है, इसलिये आमदनी और खर्चा देखकर—तपास कर घटित वेष धारण करना. जिस्की कम आमदनी हो उस्कों जुरा दबदबेवाला पोषाक नहि रखना चाहिये.

तथा धनवंत हो उस्कों मलीन—फट्टे टूटे हालतवाला पोषाक रखना वोभी बेमुनासीब है.

७ वक्र—विषम दृष्टिसें देखना नहि.

सरल दृष्टिसें देखना, इसमें बहोतसें फायदे समाये है. शंकाशीलता टल जाय, लोगोंमे विश्वास बैठे, लोकापवाद न आने पावे, स्व परहित सुखसें साध सके, ऐसी समदृष्टि रखनी चाहिये. अज्ञानताके जोरसें बांका बोलकर और बांका चलकर जीव बहोत दुःखी होते है; तदपि यह अनादिकी कुचाल सुधार लेनी जीवकों मुश्केल पडती है. जिस्की भाग्य दशा जाग्रत हुइ है वा जाग्रत होनेकी हो वोही सीधे रस्ते चल शकता है, ऐसा समझकर धुम्रकी मुठी भरने जैसा मिथ्या प्रयास नहि करतें सीधी सडकपर चलकर स्वहित साधन निमित्त सुज्ञ मनुष्यकों चूकना नहि चाहिये. ऐसी अच्छी मर्यादा समालकर चलनेसें क्रुधित हुवा दुर्जनभी क्या विरूद्ध बोल सके? कुछभी छिद्र नहि देखनेसें किंचित् एडी टेडी बातभी नहि बोल सकता है. इसलिये निरंतर

समदृष्टि रखकर चलना के जिस्सें किसीकों टीका करनेकी जरुर न पडे.

९ अपनी जीव्हा नियममें रखनी.

जीव्हाकों वश्य करनी, निकम्मा बोलना नहि, जरुरत मालुम हो तो विचारकर हितमितही भाषण करना. अगर रसलंपट होकर जीव्हाकों वश्य पडे रोगादि उपाधि खडी होती है. तथा मर्यादा बहार जाना नहि. जीभके वश्य पडे हुवेकी दूसरी इंद्रियें कुपित होकर तिन्होंकों गुलाम बनाके बहोत दुःख देती है. इस हेतुसें सुखार्थी जन जीभके ताबे न होकर जीभकोंही ताबे कर लेवे वोही सबसें बहेतर है.

१० बिना बिचारे कुछभी काम नहि करना.

सहसा—अविवेक आचरणसें बडी आपदा—विपत्ति आ पडती है. और बिचारकर विवेकसें वर्त्तने वालेकों तो स्वयमेव संपदा आ कर अंगीकार कर लेती है. वास्ते एकाएक साहस काम कीये बिगर लंबी नजरसें बिचारके, उचित नीति आदरके वर्त्तना

१४ किसीकोंभी आक्रोश करके कहेना नहि.

कोप करकें किसीकों सच्ची बातभी कहेनेसें लाभके बदलेमें गैरलाभ हाथ आता है, इस वास्ते आक्रोश करकें कहेना छोडकर स्वपरकों हितकारी और नम्रताइसें सच्ची बात विवेकपूर्वकही कहेनेकी आदत रखनी चाहिये. समजदार मनुष्यकों लाभालाभका बिचार करकेही वर्त्तना घटितहै. यही कठिन सज्जन रीतिहै कि जो हरएक हितार्थियोंकों अवश्य आदरणीय है.

१५ सबके ऊपर उपकार करना.

मेघकी तरांह सम विषम गिनना छोडकर सबपर समान हितबुद्धि रखनी. वृक्ष नीच ऊंच सबकों शीतल छांहं देता है, गंगजल सबका समान प्रकारसें ताप दूर करता है, चंदन सबकों समान सुगंधी देता है. वैसेही उपकारी जन जगत्मात्रका उपकार करता है. अपकार करनेवाले परभी उपकार करे सोही जगतूमें बडा गिनाजाता है.

१६ उपकारीका उपकार कभी भूलना नहि.

कृतज्ञजन किये हुवे उपकारकों कबीभी नहि भूलता है. और जो मनुष्य किये हुवे उपकारकों भूल जाता है वो कृतघ्न कहा जाता है. और इससे भी जो जन उपकारीका अहित करनेकों इछे वो तो महान् कृतघ्न जाणना. माता, पिता, स्वामी और धर्मगुरुके उपकारका बदला दे शके ऐसा नहि है. तथापि कृतज्ञ मनुष्य तिन्होंकी बनशके जितनी अनुकूलता संभालकर तिन्हके धर्मकार्यमें सहायभूत होनेके लिये ठिक ठिक प्रयत्न करे तो कदापि अनृणी हो शकता है. सत्य सर्वज्ञ भाषित धर्मकी प्राप्ति कराने वाले धर्मगुरुका उपकार सर्वोत्कृष्ट है. ऐसा समझकर सुविनीत शिष्य तिन्हकी पवित्र आज्ञामें वर्त्तनेके लिये पूर्ण खंत रखता है. और यह फरमानसें विरुद्ध वर्त्तन चलानेवाले गुरुद्रोही महा पातकी गिने जाते है.

१७ अनाथकों योग्य आश्रय देना.

अपनी आजीविकाके विषे जिन्होंको कुभी

साधन नहि है. जो केवल निराधार है. ऐसे अशक्त अनाथोंको यथायोग्य आलंबन–आधार–आश्रय देना यह हरएक शक्तिवंत–धनाढ्य दाने मनुष्योंकी खास फरज है. दुःखी होते हुवे दीन जनोंका दुःख दिलमें धारण करके तिन्होंकों वख्तके उपर विवेकपूर्वक मदद देनेवाले समयकों अनुसरकें महान् पुन्य उपार्जन करते हे. और तिन्हके पुन्यबलसें लक्ष्मीभी अखूट रहेती है. कुंएके पानीकी तरांह बमी उदारतासें व्यय की हुइ हो तोभी उदारताकी लक्ष्मी पुन्यरुपी अविछिन्न जल प्रवाहकी मददसें फिर पूर्ण होजाती है. तदपि कृपणकों ऐसी सुबुद्धि पूर्व अंतरायके योगसें ध्यानमें पैदाहो नहि होती है, तिस्सें वो बिचारा केवल लक्ष्मीका दासत्वपना करके अंतमें आर्त्तध्यानसें अशुभ कर्म उपार्जके हाथ घसता–रीते हाथसें यमके शरण होता है. वहां और उस्के बादभी पूर्व अशुभ अंतराय कर्मके योगसें वो रंक अनाथकों महा दुःख भुक्तना पमता है. वहां कोइ शरण –आधारभूत होता नहि है. अपनीही भूल अपनकों नमती है. कृपणभी प्रत्यक्ष देख शकता है कि कोइभी एक कवडी–कौ-

भीभी साथ बांधकर छपाया नहि और अवसान समय कौभी बांधकर साथ ले जा शकेगाभी नहि, तदपि बिचारा मम्मण शेठकी तरांह महा आर्त्तध्यान धरता और धन धन करता हुवा भूर भूरकें मरता है. और अंतमें वो बहोतही बूरे विपाक पाता है. यह सब कृपणताके कटुफल समूझकर अपनकोंभी तैसेही बूरे विपाक भुक्तने न पमे, इस लिये पानी पहेले पाल बांधनेकी तरांह अव्वलसेंही चेतकर अपनी लक्ष्मीके दास नहि लेकिन स्वामी बनकर उस्का विवेकपूर्वक यथास्थानमें व्यय करकें तिस्की सार्थकता करनेके लिये सद्गृहस्थ भाइयोंको जाग्रत होनेकी खास जरुरत है. नहि तो याद रखना कि, अपनी केवल स्वार्थ वृत्तिरुप महान् भूलके लिये अपनकोंही आगें दुःख सहन करना पमेगा, इसिलिये हृदयमें कुछभी विचार–पश्चाताप करकें सच्चा परमार्थ मार्ग अंगीकार कर अपनी गंभीर भूल सुधार लेनेकों चुकना सो श्याने सद्गृहस्थोंकों योग्य नहि है. श्री सर्वज्ञ प्रभुने दर्शाया हुवा अनंत स्वाधीन लाभ गुमा देना और अंतमें रीते हाथ घिसते जाकर

परभवमें अपनेही किये हुवे पापाचरणके फलका स्वाद अनुभवे यह कोइभी रीतिसें विचारशील सद्-गृहस्थोंकों लाजीम शोभारुप नहि है. तत्वज्ञानी पुरुषोंके यही हित वचन है. जो पुरुष यही वचनोंकों अमृत बुद्धिसें अंगीकार कर विवेकपूर्वक आदरते है सो अत्र और परत्र अवश्य सुखी होते है.

१८ किसीके अगाडी दीनता दिखलानी नही.

तुछ स्वार्थकी खातिर दूसरेके अगाडी दीनता बतानी योग्य नहि है. यदि दीनता—नम्रता करनेंकों चाहो तो सर्व शक्तिमान सर्वज्ञकी करो. क्योंकि जो आप पूर्ण समर्थ है और अपने आश्रितको भीड भांग शकते है. मगर जो आपही अपूर्ण अशक्त है वो शरणागतकी किस प्रकारसें भीड भांग शके? सर्वज्ञ प्रभुके पास भी विवेकसें योग्य मंगनी करनी योग्य है. वीतराग परमात्माकी किंवा निर्ग्रंथ अणगारकी पास तुछ सांसारिक सुखकी प्रार्थना करनी उचित नहि है. तिन्होंके पास तो जन्म मरणके

दुःख दुर करनकोही अगर नवनवके दुःख जिस्सें हट जाय ऐसी उत्तम सामग्रीकोही प्रार्थना करनी योग्य है. यद्यपि वीतराग प्रनु राग द्वेष रहित है; तथापि प्रनुकी शुद्ध नक्तिका राग चिंतामनी रत्नकि साहश फलीनूत हुए विगर रहेता नहि. शुद्ध नक्ति यहनी एक अपूर्व वश्यार्थ प्रयोग है. नक्तिसें कठिन कर्मकानी नाश हो जाता है, और उसीसें सर्व संपत्ति सहजहीमे आकर प्राप्त होती है. ऐसा अपूर्व लान गेमकर बंबूलकों नाथ नरने जैसी तुच्छ विषय आशंसनासें विकलपनसें तैसीही प्रार्थना प्रनुके अगामी करनी के अन्यत्र करनी यह कोइ प्रकारसें सुज्ञजनोकों मुनासिबही नहि है सर्व शक्तिवंत सर्वज्ञ प्रनुकी समीप पूर्ण नक्ति रागसें विवेक पूर्वक ऐसी उत्तम प्रार्थना करो यावत् परमात्म प्रनुकी पवित्र आज्ञाको अनुसरनेके लिये ऐसा उत्तम पुरुषार्थ स्फुरायमान करो के जिस्सें नवनवकी नावठ टलकर परमसंपद प्राप्तिसें नित्य दिवाली होय, यावत् परमानंद प्रकटायमान होय, मतलबकि अनंत अबाधित अक्षय सहज सुख होय. सेवा करनी तो ऐसेही स्वा

मिकी करनीके जिस्सें सेवक नी स्वामिके समान ही हो जावे.

१ए किसीकी नी प्रार्थनाका नंग करना नहि.

मनुष्य जब बमी मुशीबतमें आ गया हो तबही बहोत करके गर्व टेक गेमकर दूसरे समर्थ मनुष्यकों अपनी नीख नांगनेकी आशासें प्रार्थना करता है. ऐसें समजकर दानेदिलका श्याना और समर्थ मनुष्य तिस्की प्रार्थना योग्य ही होय तो तिस्का प्राणांत तकनी नंग नहि करके स्हामेने वालेका दुःख दूर करने लायक जो कुछ देना उचित हो सोनी प्रिय नाषण पूर्वकही देना, लेकिन उच्छूंखलवृत्तिसें देना नहि. प्रियवाक्य पूर्वक दान देना सोही नूषणरुप है अन्यथा दूषणरुप ही समजना. ऐसा हिताहितको विवेक पूर्वक सुज्ञ मनुष्यकों वर्तन चलानाही योग्य है. नहि तो दिया हुवा दाननी व्यर्थ हो जाता है और मूर्खमें गिनती होती है.

५० दीनवचन बोलना नहि.

दीन वचनोसें मनुष्यका भार—बोज हलका होजाता है और फिर सुज्ञजन परीक्षाभी करलेते है कि यह मनुष्य कपटी या तो खुशामदखोर है. गुण वंतकों गुणि जानकर उचित नम्रता बतानी वो दीन पनेमें गिनीजाती नहि है. गुणी पुरुषोंके स्वाभाविक ही दास बनकर रहेना यह अपनेमें स्वाभाविक गुण-प्राप्तिके निमित्त होनेसें वो दूषितही नहि गिनाजाता है, इसलिये विवेक लाकर जरुरत हो तब अदीन भाषण करना कि जिस्सें स्वार्थ हानि होने नहि पावे. और यह उत्तम नियमे विवेकी जन जीवन पर्यंत निभावे तो अत्यंतही शोभारुप है.

५१ आत्मप्रशंसा करनी नहि.

आत्मश्लाघा याने आप बडाइ करकें खुश होना यह महान् दोष है. इस्सें महान् पुरुषोंका अपमान होता है. एसें महत्पुरुषोंकी आशातना—अवमानता करनेसें कर्मबंधन कर आत्मा दुःखी होता है. सज्जन पुरुषोंकी यही रीतिही नहि है. सज्जन

पुरुषो तो दूसरेका परमाणु जितनाभी गुणोंकों बखानते है, और अपना मेरुके समान बडे गुणोकाभी गान नहि करते. तो गुणके बिगर घमंड रखकर अपूर्ण घटकी तरांह न्यूनता दिखानी सो कितनी बडी भूल और विचारने जैसी बात है. यह बातका बिचार कर पूर्ण घडेकी समान गंभीरताइ धारण करनी शीख लेनी और आप बडाइ करनी छोड देनी; क्यों कि आप बडाइ करनेमें कदम दर कदम पर निंदाका दोष लगता है. पर निंदाके पाप अति बूरे होनेसें मिथ्या आप बडाइ करनेवाला प्राणी तैसें पापकर्मोसें अपने आत्माकों मलीन कर परभवमें या क्वचित् यही भवमें बहोत दुःखी हालतमें आजाता है.

११ दुर्जनकीभी कबी निंदा नहि करनी.

परनिंदा करनेसें कुछभी फायदा नहि है, मगर निंदा करनेवालेकों बडा गेरफायदा होता है. अपना अमूल्य वख्त गुमाकर आपही मलीन होता है. निंदा यह स्हामनेवालेकों सुधारनेका मार्ग नहि है किंतु बिगाडनेका रस्ता है, एसो कहाजाय तो

कुछ जूंठा नहि है. सज्जन जनतो तैसे निंदकोसें ज्यादा ज्यादा जाग्रत–सचेत रहकर गुण ग्रहण करते है लेकिन दुर्जन तो उलटे कुपित होकर दुर्जनताकीही वृद्धि करते है. इसिलिये दुर्जनकों निंदासेंभी हानिही हाथ आती है. संत–सज्जनोकी निंदासें सज्जन जनकोंतो कुछभी औगुन मालुम होता नहि है; तदपि तैसे उत्तम पुरुषोंकी नाहक निंदा करनेसें आशयकी महा मलीनता होनेके लिये निकाचित् कर्मबंधकर निंदक नरकादि अधोगतिमेंही जाते है. निंदा, चाडी, परद्रोह तथा असत्य कलंक चडानेवाले वा हिंसा, असत्य भाषण, पर द्रव्य हरण और परस्त्री गमनादि अनीति वा अनाचार करनेवाले, क्रोधांध, रागांध होनेवालेके जो जो बूरे हाल होनेका शास्त्रकारोंने वर्णन कीया है वो, तथा तिस संबंधी हितबुद्धिसें जो कुछ कहेना वो निंदा नहि कही जाती है, मगर हितबुद्धि बिगर द्वेषसें परायेकी बातें कर दिल दुभाना सो निंदा कहि जाती है. और वह निंद्य है, इसलिये नाम लेकर परायेकी बदी करनेका मिथ्या प्रयास करना नहि. कबी निंदा करनेका दिल

हो जाय तो सच्चे और अपनेही दोषोंकी निंदा करनी कि जिस्सें कुछभी दोषमुक्त होता है. केवल दोषोंकीभी निंदा करनेसें कुछ कार्य सिद्धि नहि होती, तोभी परनिंदासें स्वनिंदा बहोतही अच्छी है.

५३ बहोत हंसना नहि.

बहोत हंसना सो भी अहितकारी है. बहोत हंसनेसें परिणाममें रोनेका प्रसंग आता है. हंसनेकी बूरी आदत मनुष्यकों बडी आपत्तिमें डालती है. बहोत वख्त हंसनेकी आदत होनेसें मनुष्य कारणसें या बिगर कारणसें भी हंसता है और वैसा करनेसें राज्यसभा या अंतःपुरमें हंसनेवालेकी बडी ख्वारी होती है, इसिलिये वो बूरी आदत प्रयत्न करकें छोडदेनीही योग्य है. कहेनावतभी है कि 'हंसी विपत्तिका मूल है.' हाथसें करकें जीकों जोखममें डालना हो वा हाथसें करकें उपाधि खडी करनी हो तो ऐसी कुटेव रखनी. अन्यथा तो तिस्कों त्यागदेनी उसमेंही सुख है. सभ्य जनकीभी यही नीति है. मुमुक्षु–मोक्षार्थी संत सुसाधुओंकों तो वो

कुटेव सर्वथा त्यागदेने लायकही है. ऐसी अछी नीति पालन करनेसेंही प्राणी धर्मके अधिकारी बनकर सर्वज्ञ भाषित धर्मको सम्यग् प्रमाद रहित सेवन कर सद्भाग्यके भागीदार होके अंतमें अक्षय सुख संपादन कर शकता है.

५४ वैरीका विश्वास करना नहि.

विश्वास नहि करने योग्य मनुष्यका विश्वास करनेसें बमी हानि होती है, इस लिये पहिलेसेंही खबरदार रहेना कि जिस्सें पीछेसें पश्चाताप नहि करना पमे. काम, क्रोध, मद, मोह मत्सरादिको अंतरंग शत्रु समूझकर तिन्होंका कबीभी विश्वास सच्चे सुखार्थीको करना योग्य नहि है. सर्वज्ञ प्रभुने पंच प्रमादोंको प्रबल शत्रुभूत कहे है.

जिस्के योगसें प्राणी प्रकर्षकर स्व कर्तव्यसें भ्रष्ट हो यावत् बेभान होता है सोही प्रमाद कहा जाता है. मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा यह पांच प्रमाद है. और यह पांचोंमेसें एक हो तो भी महा हानिकारी है, और जब पांचों प्रमादोंके

वश जो मनुष्य पड गया हो उस्का तो कहे नाही क्या ?

मद्यपानसें लक्ष्मी, विद्या, यश, मानादिकी हानि होती है सो जगत् प्रसिद्ध है.

विषय विकारके ताबे होनेवाला बडा योगीश्वर हो, ब्रह्मा हो तोभी स्त्रीका दास बन जाता है और हिम्मत हारकर एक अबलाकाभी दीन दास बनता है यही विषयांधका फल है.

कषाय—क्रोध, मान, माया और लोभ यह चारोंकी चंडालचोकडी कहीजाती है. तिन्हका संग करनेवाला यावत् तिस्में तन्मय होकर वा हुवा क्रोधांध यावत् लोभांध कुछभी कृत्याकृत्य हिताहित देख शकता नहि. कषाय—कलुषित मति फिर कुछ औरही नया देखाव देता है. बूढा है पर बालककी तरांह और पंडित है पर मूर्खकी तरांह यावत् भूतग्रस्तकी मुवाफिक विपरीत—विरुद्ध चेष्टा करता है, जिस्सें तिस्का बडा लोकापवाद प्रसरता है. कषायांध विवेकशून्य पशुकी तरांह अपमान पाता है. यावत् बूरे हालसें मृत्यु पाकर दुर्गतिकाही भागी

होता है. इसलिये क्रोधादि कषायकी सेवा करनेवाले-कों मनुष्य नहि मगर हैवान समूझना. कट्टा दुश्मनसेंभी ज्यादा खाना खराबी करनेवाले कषायही है, ऐसा समूझकर कुछ हृदयमें भान लाया जाय तो अच्छा. कट्टा शत्रु एकही भवमें दुःख दे शकता है, लेकिन यह कषाय शत्रु तो भवभवमें दुःख दे शकते है.

निद्रा देवीके परवश पडे हुवे प्राणीकीभी बहोत बुरी हालत होती है. जो निद्राके ताबे न होकर निद्राकोंही ताबे करलेकर विवेक धारण करते है तिन महाशयोंकों लीलाल्हेर होती है.

विकथा—जिस्के अंदर स्व पर हित तत्वसें संस्कारित न हुवा हो, तैसी वाहियात बातें करनी सो विकथा कहीजाती है. राजकथा, देशकथा, स्त्रीकथा, तथा भक्त—भोजन कथा यह चार विकथाकों त्याग कर जिस्सें स्व पर हित अवश्य साध शके तैसी धर्म कथा कहेनी योग्य है. विकथा करनेवालेका कीमती वख्त कौडीके मूल्यमें चलाजाता है, और विवेकपूर्वक धर्मकथा कहेनेवालेका वख्त अमूल्य गिनाजाता

है; तदपि विवेक विकल लोग विकथा वर्जकर उत्तम धर्म कथासें वख्तकों सार्थक करनेके वास्ते खंत नहि रखते है, तो तिन्होंको आगे बहोत पस्तानाही पमेगा. और जो विवेकपूर्वक यह हितोपदेशकों हृदयमें धारणकर तिस्का परमार्थ बिचारकें सीधे रस्ते चलेंगे तो सर्वत्र सुखी होंगे. सच्चे सुखार्थी जन यह पापी पांचों प्रमादके फंदमें न फंसकर अप्रमाद दंमसें तिन्होंका नाश करनेकेलिये उद्युक्त रहेनाही दुरुस्त धारते है. अप्रमादके समान कोइभी निष्कारण निःस्वार्थि बांधव नहि है. इसलिये पापी प्रमादोंके परका विश्वास परिहरके महा उपकारी अप्रमाद बांधवमेंही सर्व विश्वास स्थापन करना कि जिस्सें सर्वत्र यश प्राप्त होय.

५५ विश्वासुकों कबीभी दगा देना नहि.

विश्वास रखकर जो शरण आवे उस्कों दगा देना उस्के समान कोइ एकभी ज्यादा पाप नहि है. वो गोदमें सोते हुवेका शिर काट देने जैसा जुल्म है. अछे अछे बुद्धिशाली लोगभी धर्मके लिये नि-

श्वास करते है. तैसे धर्मार्थी जनोंको स्वार्थांध बनकर धर्मके व्हानेही ठगलेवे यह बमा अन्याय है. आपहीमें पोलंपोल होवे तोन्नी गुणी गुरुका आमंबर रचकें पापी विषयादि प्रमादके परवशपनेसें न्नोले लोगोंको ठगलेवे. तिन्के जैसा एकन्नी विश्वासघात नही है. न्नोले न्नक्त जानते है कि अपन गुरुकी न्नक्ति करकें गुरुका शरण लेकर यह न्नवजल तिर जाएंगे. लेकिन पत्थरके नावकी मुवाफिक अनेक दोषोंसें दूषित है तो न्नी मिथ्या महत्वकों इछनेवाले दंन्नी कुगुरु आपकों और परिक्षा रहित अंधप्रवृत्ति करेनवाले आपके न्नोले आश्रित शिष्य न्नक्तोंकों, न्नव समुद्रमें मूबा देते है. और ऐसें स्वपरकों महा दुःख उपाधिमें हाथसें माल देते है, जो ऐसा कार्य करते है वो धर्मठग कुगुरुउको यह संसार चक्रमें परिभ्रमण करनेमें समय महा कटु फलका स्वादानुन्नव लेना पमता है. इस वास्तेही श्री सर्वज्ञ देवने धर्मगुरुउको रहेणी कहेणी बराबर रखकर निर्दंन्नतासें वर्त्तनेकाही फरमान कीया है. अपन प्रकटतासें देख शकते है कि कितनेक कुम-

तिके फंदमें फंसे हुवे और विषय वासनासें पूरित हुवे हो तदपि धर्मगुरुका मोल—स्वांग धारण कर केवल अपना तुच्छ स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये अनेक प्रपंच जाल गुंथन कर और अनेक कुतर्क करकें सत्य और हितकर सर्वज्ञके उपदेशकोंभी छुपाते है इस तरहसें आप धर्मगुरुही धर्मठग बनकर भोले हिरन सादृश केवल कर्णेंद्रिये लोलूपी आंखे मींचकर हाजी हा करनेवाले अपने आश्रित भोले भक्तोंकों ठगकर स्वपरका बिगाडते है. सो विवेकी हंस कैसें सहन कर सकें? दिन प्रतिदिन वो पापी बेप पसार कर दुनियांकों पायमाल करते है, तिस्सें वो उपेक्षा करने लायक नहि है. जगत् मात्रकों हित शिक्षा देनेकेलिये बंधाये हुवे दिक्षित साधुउकि जो सर्वज्ञ प्रभुकी पवित्र आज्ञा—वचनोंकों हृदयमें धारन करनेवाले और निष्कपटतासें तदवत् वर्त्तनेकों स्वशक्ति स्फुराने हारे और समस्त लोभ लालचकों छोडकर जन्म मरणके दुःखसें डरकर लेश मात्रभी वीतराग वचनको छुपाते श्री सर्वज्ञकी आज्ञाकों पूर्ण प्रेमसें आराधनेंकी दरकार कर रहे है, वोही

धर्मगुरुके नामकों सत्यकर बतानेकों शक्तिमान् हो सकते है. तैसे सिंह किशोरही सर्वज्ञके सत्य पुत्र है, दूसरे तो हाथीकें दांतोंकी समान दिखानेके दूसरे और खानेके—चर्वण करनेके जो दूसरे है तिनके नामकों तो रूढ कोसका नमस्कार है ! जो जव्यो ! विवेक चक्षु खोलकर सुगुरु और कुगुरु—सच्चे धर्म गुरु और धर्मठगकों बराबर पिछानकें लोजी, लालचु और कपटी कुगुरुकों काले सांपकी तरह सर्वथा त्याग कर. अशरण शरण धर्मधुरंधर सिंहकिशोर समान सत्य सर्वज्ञ पुत्रोंका परम जक्ति जावसें सेवन—आराधन करनेकों तत्पर हो जाउ ! जिस्सें सब जन्म जरा और मरणकी उपाधी अलग कर तुम अंतमें अक्षय पद प्राप्त करो ! उत्तम सारथी या उत्तम नियामक समान सद्गुरुकेही दृढ आलंबनसें अगाउजी असंख्य प्राणि यह दुःखमय संसारका पार पाये है. अपनकोंजी ऐसाही महात्माको सदा शरण हो. ऐसे परोपकारशील महात्मा कबीजी प्राणांत तकजी परवंचन करतेही नहि.

५६ कृतघ्नता—किये हुवे गुणाका लोप कबीभी नहि करना.

उत्तम मनुष्य औगुनके उपर गुन करते है. मध्यम मनुष्य दूसरेने गुन कीया हो तो आप अपनी वख्त हो उस वख्त तबने जितना बदला देना धारते है; परंतु अधम मनुष्य तो कीये हुवे गुनका भी लोप करता है. ऐसी अधम वृत्तिवाले अज्ञानी अविवेकी जनसें तो कुत्तेभी अछे गिनजाते है, के जो थोमाभी रोटीका टुकमा या खोराक खाया हो, तो खिलानेवालेकों देखकर अपनी पुंछ हिलाकर खुश हो अपना कृतज्ञपना जाहेर करते हुवे उनके घरकी रात दिन चोकी करते है ऐसा समझकर कृतज्ञता आदर कर धर्मकी ल्यायकात प्राप्त कर कुछभी धर्म आराधना करके स्व—मानवपना सार्थक करना. अन्यथा मातुश्रीकी कुक्षीकों धिःकार पात्र बनाकर—शरमींदी बनाकर भूमिकों केवल भारभूत होने जैसा है. समझ रखना कि, कृतज्ञ विविकी रत्नोंकीही माता रत्नकुक्षी कहाती है. ऐसा

न्यायका रहस्य समझकर स्वपर हितकारी विवेक धारण करनेका यत्न करना.

७७ सद्गुणीकों देखकर प्रसन्न होना.

वो प्रमोद या मुदिता भाव कहाजाता है. चंद्रकों देखकर चकोर जैसें खुशी होता है, और मेघ गर्जना सुनकर मयूर जैसे नाचता है तैसें सद्गुणीकों दर्शन मात्रसें भव्य चकोरकों हर्ष—प्रकर्ष होना चाहिये. दुसरेके सद्गुणोंकी प्रतीति हुवे पीछेभी तिनके ऊपर द्वेष धरना ये दुर्गतिकाही द्वार है, वास्ते केवल दुःखदाइ द्वेषबुद्धि त्यागकर सदैव सुखदाइ गुणबुद्धि धारण कर विवेकी हंसवत् होनेके लिये सदगुणीकों देखकर परम प्रमोद धारण करना.

७८ जैसे तैसेके संग स्नेह करना नहि.

'मूरख साथ सनेहता, पग पग होवे कलेश.' ए उक्ति अनुसार मूर्ख कुपात्रके साथ प्रीति बंधनी नहि क्योंकि मूर्खकी प्रीतिसें अपनीभी पत जाती है. यदि स्नेह करना चाहते हो तो विवेकी हंससदृश, संत—सुसाधु जनके साथही करो कि जिस्सें तुम

अनादि अविवेक त्याग कर सुविवेक धारनेमें समर्थ हो सको. खास याद रखना चाहिये कि, संत सुसाधुके समागम समान दूसरा उत्तम आनंद नहि है. ऐसा कौन मूर्खशिरोमणि हो कि अमृतको छोडकर हालाहल विष सादृश अविवेकी–कुशीलकी संगति चाहे? श्याना मनुष्य तो कबीभी न चाहेगा! जो भूंडिये जैसी वृत्तिवाला होगा सो तो जहां तहां अशुचि स्थानमेंही भटकता फिरेगा उसमें क्या आश्चर्य है? क्योंकि जिस्का जैसा जाति स्वभाव होवे वैसाही कृत्य कीया करे. ऐसे नीच जनोंकी सोबतसें अछे सुशील मनुष्योंको भी क्वचित् छिंटे लगते है.

७ए पात्रपरीक्षा करनी चाहिये.

जैसें सुवर्णकी कष, छेदन, तापादिसें परीक्षा कीइ जाती है, जैसें मोतिकी उज्वलता आदिसें परीक्षा कीइ जाती है, तैसें उत्तम पात्रकी भी सुबुद्धिसें सद्गुणोंकी परीक्षा करनी चाहिये. सुपात्रकी अंदर उत्तम वस्तु शोभायमान या कायम होती है.

सुपात्रमें विवेक पूर्वक बोया हुवा उत्तम बीज शुद्ध भूमिकी तरह उत्तम फल देता है. छीपमें पड़ा हुवा स्वातिजल बिंदुका सच्चा मोति पकता है, और सांपके मुखमें पड़ाहु वा वोही (स्वाति) जलबिंदु झहेररुप होता है; वास्ते पात्र परीक्षा कर दान, मान, विद्या, विनय और अधिकार वगैरा व्यवहार करना योग्य है. सुपात्रमें सब सफल होता है, और कुपात्रमें नफेके बदले टोटा–अनर्थ पैदा होता है. इसलिये पात्रा पात्रका विवेक बुद्धिशालीकों अवश्य करना कि जिस्सें स्वपरकों अत्र समाधि पूर्वक धर्माराधनसें परत्र–परलोकमें भी सुखसंपत्ति होती है, सोही बुद्धि प्राप्तिका शुभ फल है.

३० अकार्य कबोभी करना नहि.

प्राणांततक भी नही करने योग्य निंद्य कार्य सज्जन जन करतेही नही है. जो लोग प्रमाद वश होकर (परवशतासें) लोग विरुद्ध वा धर्म विरुद्ध अति निंद्यकर्म करे उन्होंकों सज्जनोंकी पंक्तिसें बहार ही गिनने चाहिये. गुण दोष, लाभालाभ, कृत्या

कृत्य, उचितानुचित, नक्ष्यानक्ष्य. पेयापेय वगैरा उचित विवेक विकल मनुष्यको पशुवत् समझना और उचित विवेक पूर्वक सदैव शुनकार्योंके सेवनमें उद्यमशील मनुष्यकों, एक अमूल्य हीरेके समानही जानना. ऐसे जनोंका जन्मनी सार्थक है.

३१ लोकापवाद प्रवर्त्तन हो वैसा नहि वर्त्तना.

जिस कार्यसें लोगोमें लघुता होय वैसा कार्य बिना सोचे-बिचारे (अघटित कार्य) करना नहि जिस्सें धर्मकों लांछन लगे-धर्मकी हीलना-निंदा होय शासनकी लघुता होय तैसा कार्य नवनीरु जनकों प्राणांत तकनी नहि करना चाहिये पूर्व महान् पुरुषोंके सद्वर्त्तनकी तर्फ लक्ष रखकर जिस प्रकारसें अपनी या दूसरेकी-यावत् जिनशासनकी उन्नति होय तिस प्रकारसें विवेकसें वर्त्तना. ' लोग विरुद्ध चाउ ' यह सूत्रवाक्य कदापि नूल नहि जाना, जिस्स सब सुख साधनेका शुन मनोरथ कवीनी फलिनूत होय तैसे समालकर चलना सोही सर्वोत्तमहै.

३१ साहसीकपना कबीन्नी त्यागदेना नहि.

आपत्तिके समय धैर्य, संपत्तिके समय क्षमा, सभाकी अंदर सत्य वार्त्ता निर्भय होकर कहनी, शरनागतका सब प्रकारसें शक्ति मुजब संरक्षण करना और स्वार्थभोग व्हाय इतना नुकसान होजाता हो तथापि अदल इन्साफ देना. इत्यादि सद्गुण सत्त्ववंत सज्जनोमें स्वाभाविकही होते है. और ऐसे ही उत्तम जन धर्मके सत्य—सच्चे अधिकारी है. तैसे विवेकी हंसही सब मलीनता रहित निर्मल पक्ष भजकर धर्म मार्ग दीपानेके वास्ते समर्थ होते है. वैसे सत्य पुरुषोंकोंही अनंतानंत धन्यवाद है. जो सच्चा पुरुषार्थ स्फुरायकें अपना पुरुष नाम सार्थक करते है, तिनकीही उज्वल कीर्ति होती है, या निर्मल यशभी तिनकाही दिगंतमें फैलता है. जो महाशय अचल होकर ऐसी उत्तम मर्यादा सदैव पालते है वो प्रसन्नतासें पवित्र नीतिकों अनुसरकें अत्र अक्षय कीर्ति स्थापित कर, परत्र अवश्य सद्गति गामी होते है. तैसे साहसीक शिरोमणिकाही जन्म

सार्थक है. तैसा उत्तम सात्विक साहसीक सिवा स्व जन्म निष्फल है. सच्चे सर्वज्ञ पुत्र उत्तम प्रकारकी शुद्ध साहसीक वृत्ति सहितही होते है. वो लखों आश्रितोंके आधाररुप है. तिनकों सिंह किशोरकी तरह साहसीकता धारण करनीही घटित है. तिनकी आबादीके उपर लखो मनुष्योंके भविष्यका आधार है. समझकर सुखसें निर्वहन हो सके तैसी महाव्रत आचरनेरुप—महा प्रतिज्ञा करके तिनका अखंड निर्वाह करना वोही उत्तम साहसीकता है. वोही महान् प्रतिज्ञाका स्वच्छंद आचरणोंसें भंग करनेके समान एकभी दूसरी कायरता है ही नहि. यह दुःख दावानलसें तैसे प्रतिज्ञाभ्रष्टकी मुक्ति हो सकती नहि, ऐसा समझकर—'तेल पात्रधर' या राधावेध साधनेवालाकी' तरह अप्रमत्त होकर सर्वज्ञ प्ररुपित तत्वरहस्य प्राप्त करकें अंगीकार कीइ हुइ महा प्रतिज्ञाकों अखंड पालन करे, वो पूर्ण प्रतिज्ञावंत होकें अपना और दुसरेका निस्तार करनेमें समर्थ होता है. वोही सच्चे साहसीक गिनाये जाते है; वास्तें स्वपरकों डूबानेवाली कायरता छोडकर

हरएक मुमुक्षुकों उत्तम साहसीकता धारण करनी ही श्रेष्ठ है. ऐसा करनेसें सब मलीनता दूर होकर स्व पर हितद्वारा शासनोन्नति होने पावे. अहो! कब प्राणी कायरता छोडकर उत्तम साहसीकता आदरेंगे और उस द्वारा स्व परकी उन्नति साधकर कब परमानंद पद प्राप्त करेंगे!! तथास्तु.

३३ आपत्ति वखतभी हिम्मत रखकर रहना.

कष्टके समयभी नाहिम्मत होना नहि. जो महाशय धैर्य धारण करकें संकटके सामने अडजाते है अर्थात् वो वखत प्राप्त होनेपरभी उत्तम मर्यादा उल्लंघते नहि; मगर उलटे उत्तम नीतिके धोरणकों अवलंबन करके रहते है, तिन्हकों आपत्तिभी संपत्तिरुप होती है. शत्रुभी वश होता है. वो धर्मराजा की मुवाफिक अक्षय कीर्त्ति स्थापन करके श्रेष्ठ गति साधन करते है; परंतु जो मनुष्य वैसे वखतमें हिम्मत हारकर अपनी मर्यादा उल्लंघन करकें अकार्य सेवनकर मलीनताका पोषन करता है, वो इस ज-

गत्मेंभी निंदापात्र हो पापसें लिप्त हो परत्रभी अति दुःखपात्र होता है.

३४ प्राणांत तकभी सन्मार्गका त्याग करना नहि.

ज्यों ज्यों विवेकी सज्जनोंकों कष्ट पडता है त्यों त्यों सुवर्ण, चंदन और इख (गन्ने)की तरह उत्तम वर्ण, उत्तम सुगंधि और उत्तम रस अर्पण करते है; परंतु तिन्होंकी प्रकृति विकृति होकर लोकापवादके पात्र नहि होती है. ऐसी कठीन करणी करकें उत्तम यश उपार्जन कर वो अंतमें सद्गतिगामी होते है.

३५ वैभव क्षय होजानेपरभी यथोचित दान करना.

चंचल लक्ष्मी अपनी आदत सार्थक करनेकों कदाचित् सटक जाय तोभी दानव्यसनी जन थोडेमेंसेंभी थोडा देनेका शुभ अभ्यास छोड देवे नहि. तैसे शुभ अभ्यासके योगसें क्वचित् महान् लाभ संपादन होता है. यावत् लक्ष्मीभी तिनके पुन्यसें

खींचाइ हुइ स्वयमेव आ मिलती है; परंतु खड्गकी धारापर चलने जैसा यह कठीन व्रत साहसीक पुरुषही सेवन कर सकता है.

३६ अत्यंत राग—स्नेह करना नहि.

स्वार्थनिष्ठ संबंधी जनके साथ राग करनाही मुनासिब नहि है. जिस्के संयोगसें राग धारण कर सुख मानता है तिस्केही वियोगसें दुःखभी आपही पाता है. इतनाही नहि लेकीन संबंधी जनकी स्वार्थनिष्ठता समज जानेपरभी दुःख होता है. वास्ते ज्ञानी अनुभवी पुरुषोंके प्रमाणिक लेखोंमें प्रतीति रखकर वा साक्षात् अनुभव—परीक्षा करकें तैसा स्वार्थनिष्ठ जगत्में रागही करना लायक नहि है. तिसमेंभी बहोत मर्यादा बहारका राग—स्नेह करना सो तो प्रकट अविवेकही है. क्योंकि ऐसा करनेसें अंधकी माफिक कुछ गुण दोष देखकर निश्चय नहि कर सकता है. युं करतेभी राग करनेकी चाहना हो तो संत सुसाधुजनोंके साथही राग करो कि जिस्सें कुत्सित राग विषका नाश कर आत्माकों निर्विषता

प्राप्त होय. अन्यथा राग-रंगसें अपना स्फाटिक समान निर्मळ स्वभाव छोडकर परवस्तुमें बंधन कर जीव अत्र परत्र दुःखकाही भोक्ता होता है. रागकी तरह द्वेषभी दुःखदाइही है.

३७ वल्लभजनपरभी बार बार गुस्सा नहि करना.

क्रोधसें प्रीतिकी हानि होती है, क्रोधसें वल्लभजनभी अप्रिय हो पडता है, क्रोध वशवर्त्ती जीव कृत्याकृत्यका विवेक भूलकर अकृत्य करनेकों प्रवर्त्तता है, वास्ते सुखार्थिजनोने कषायवश होकर असभ्यता आदरकें कबीभी उचित नीतिका उल्लंघन कर स्व परकों दुःखसागरमें डूबाना नहि.

३८ क्लेश बढाना नहि.

कलह वो केवल दुःखकाही मूल है. जिस मकानमें हमेशां कलह होता है तिस मकानमेंसें लक्ष्मीभी पलायन हो जाती है; वास्ते बन आवे जहांतक तो क्लेश होने देनाही नहि युं करते परभी यदि क्लेश हो गया तो उन्कों बढने न देते

खतम–शमन कर देना. छोटा बडेके पास क्षमा मंगे ऐसी नीति है; मगर कभी छोटा अपना गुमान छोडकर बडेके अगाडी क्षमा न मंगे तो बडा आप चला जाकर छोटेकों खमावे जिस्से छोटेकों शरमींदा होकर अवश्य खमना और खमानाही पडे. क्लेशकों बंध करनेके लिये 'क्षमापना' खमतखामनेरूप जिनशासनकी नीति अत्युत्तम है. जो महाशय वो माफिक वर्त्तन रखता है तिनकों यहां और दूसरे लोकमेंभी सुखकी प्राप्ति होती है. और जो इस्से विरुद्ध वर्त्तन चला रहे है तिनकों सब लोकमें दुःखही है.

३ए कुसंग नहि करना.

'जैसा संग हो वैसाही रंग लगता है.' यह न्यायसें नीचकी सोबत या बूरी आदतवाले लोगोंकी सोबत करनेसें हीनपत आता है. और उत्तमकी सोबतसें उत्तमता प्राप्त होती है. क्या देवनदी गंगाका शुद्ध मीठा पानीभी खारे समुद्रमें मिलजानेसें खारा नहि होता है? अवश्य होता है! तैसेही

अन्य अपवित्र स्थलसें आया हुवा पानी गंगाका पवित्र जलमें मिलनेसें कया गंगाजळके महात्म्यकों प्राप्त नहि करता है? अलबत्त, वो गटरका जल हो तो भी गंग समागमसें गंगजलही हो जाता है! ऐसा संगति महात्म्य समझकर श्याने मनुष्यकों सर्वथा कुसंग छोडदेकर हर हमेशां सुसंगतिही करनी योग्य है; क्योंकि–' हानि कुसंग सुसंगति लाहु'–कुसंगतिमें हानी और सुसंगतिमें लाभ ही मिलता है!'

४० बालकसेंभी हित वचन अंगीकार करना.

रत्नादि सार वस्तुओंकी तरह हितवचन चाहे वहांसें अंगीकार करना यही विवेकवंतका लक्षन है. ज्ञानी पुरुष गुणोंकीही मुख्यता मानते है. अवस्थासें लघु होने परभी सद्गुण गरीष्ठकों गुरु मानते है, और वयोवृद्धकों गुणरिक्त होनेसें बालकवत् मानते–गिनते है. ऐसा समझकर विवेकी सज्जन गुणमात्र ग्रहण करनेकों सदैव अभिमुख रहते है.

४१ अन्यायसें निवर्त्तन होना.

समबुद्धि धारण कर राग रोष छोडकर सर्वत्र निष्पक्षपाततासें वर्त्तना यही सद्बुद्धि प्राप्त होनेका उत्तम फल है, ऐसा समझकर सत्यपक्ष स्वीकारना सोही परमार्थ है. ऐसा वर्त्ताव चलानेमेंही तत्वसें स्वपरहित रहा है. लोकापवादकाभी परिहार और शासनोन्नति इसी प्रकारसें हांसिल कीइ जाती है. स्वछपमें निडरतासें सच्ची हिम्मत पूर्वक न्याय मार्ग अंगीकार किये बिगर जीवका कबीभी मुक्तता होतीही नहि. ऐसा समझकर श्याने जनकों सर्वथा न्यायकाही शरण लेना उचित है. नाकमें दम आ जाने तकभी अनीतिका मार्ग स्वीकारना अयोग्य है.

४२ वैभवके वख्त खुमारी नहि रखनी.

पूर्व पुण्य योगसें संपत्ति प्राप्त हुइ हो, तो संपत्तिके वख्त अहंकारी न होते नम्र होना सोही अधिक शोभारुप है. क्या आम्रादि वृक्ष भी फल प्राप्तिके वख्त विशेष नम्रता सेवन नहि करते है? बेशक नम्र होते है! वास्ते संपत्तिके वख्त नम्र हो-

नाही योग्य है. नही कि स्वछंदी बनकर मदमें खी चाकर तुंग मिजाजी होना. संपत्तिके समय मदांध होना यह बमा विपत्तिकाही चिन्ह है !

४३ निर्धनताके वख्त खेदनी न करना.

पुर्वकृत कर्मानुसार प्राणी मात्रकों सुख दुःख होय तैसे सम विषम संयोग मिल जाय तो नी तैसे समयमां कर्मका स्वरुप सोचकर हर्ष–उन्माद या दीनता न करते समन्नावसेंही रहेकर इयाना–सुज्ञ जनोने शुन्न विचार वृत्ति पोषण कर समर्थ धर्मनीतिका प्रीतिसें वा हिम्मतसें सेवन करना योग्य है. पहिले अशुन्न कर्म करनेके वख्त प्राणी पीछे मुंह फिराकर देखते नहि है, जिस्के परिणामसें अनंत दुःख वेदना सहन करते हुवे वो त्रास पाते है. अशुन्न–निंद्यकर्म करकें अपने हाथोंसे मंग लीये हुवे दुःख उदय आनेसें दीनता करनी सो केवल कायरता ही कही जाति है. दुःख पसंद पमता न हो तो दुःखदायक निंद्यकृत्योंसें विचार कर–पश्चाताप कर उनसें अलग हो जाना, जिस्सें तैसे दुःख विपाक

भोगने पमेही नहिः परंतु पूर्वके कीये हुवे दुष्कृत्यों के योगसें पमा हुवा दुःख सहन करतें दीन हो खेद–विषाद धरना वा विकल हो अविवेकतासें दूसरे दुष्कृत्य करना सो तो प्रकट दुःखका मार्ग है.

४४ समभावसें रहेना.

जो महाशय सुख, दुःख, मान, अपमान, निंदा, स्तुति, सधनता, निर्धनता, राजा, रंक, कंचन, पथ्थर, तृण और मणि वा नारी और नागनकों अगामी कहे हुवे सद्विचार मुजब वर्त्तन रखकर समान गिनते है और उसमें मोह प्राप्त नही होता है. यावत् तिनकों केवल कर्मविकाररुप निमित्त भूत गिनकर मनमें विषमता न ल्याते हर्ष विषाद रहित सम बुद्धिसेंही देखते है, तैसे सद्विचारवंत विवेकवंत–सद्गुण शिरोमणि जन समसुख अवगाह कर धर्म आराधनसें अवश्य स्वकार्य सिद्ध करते है; परंतु जो अज्ञानता के जोरसें–विवेक विकल मनसें विषम वर्त्तन करते है, हर्ष खेद धरकें आप मतसें उलटे चलते है सो तो क्रोध उपायसें भी

आत्मकार्य साध नही सकते है.

४७ सेवकके गुण समक्ष कहेना.

सच्चे सेवककी प्रत्यक्ष प्रशंसा करनेसें कुछ हानि नही किन्तु लाभही है. उत्साहकी वृद्धिके साथ वो चुस्त स्वामि भक्त हो जाता है, और तैसे नहि करनेसें कदाचित् तिसकी श्रद्धा मंद होनेसें सेवा विमुखभी हो जाता है.

४८ पुत्रकी प्रत्यक्ष प्रशंसा नहि करनी.

पुत्र या शिष्य चाहे वैसा सद्गुणी हो, तदपि तिसकी समक्ष प्रशंसा नहि करनी सोही उत्तम नीति है. तिनमें विनयादि उत्तम गुण बढानेका वो रस्ता है. बाल्यावस्थामें अच्छे संस्कार प्राप्त हो ऐसी फिकर रखनी वे माता पिता और गुरुकी फर्ज है. मगर गुण प्राप्त हुवे बिना मिथ्या प्रशंसासें अभिमानमें आजानेसें कदाचित् तिनका जन्म बिगडता है. ऐसा समझकर तिनकी परिपक्व स्थिति होजाने तक विचार विवेकसें वर्त्तना, जिस्सें तैसा सद्विवेक शीखकर पुत्र, पुत्री, शिष्य वा शिष्या

अपना जन्म सुखपूर्वक सुधार सकता है. पुत्रादि समक्ष माता पितादिकोंभी अपशब्दादि अविवेक यत्नसें त्याग देना.

४७ स्त्रीकी तो प्रत्यक्ष वा परोक्ष भी प्रशंसा करनीही नहि.

स्त्रीका स्वभाव तुच्छ होनेसें अपूर्णता बताये बिगर नहि रहेती, वास्ते चाहे वैसी गुणवंती स्त्री हो तोभी मनमेंही समझ रहेना. स्त्रीकोंभी पति तर्फ विनीत शिष्यकी माफिक विशेष नम्र होनेकी आवश्यकता है. अपना पतिव्रत तबही यथाविधि समाला जाता है. पतिकोंभी स्त्रीकी तर्फ उचित मृदुता अवश्य रखनी चाहियें. ऐसे एक दूसरेकी अनुकूलतासें गृहयंत्रके साथ धर्मयंत्रभी अच्छी तरह चल सकता है. तिस बिगर दोनु यंत्र बार बार बिगडे या रुकजाते है. अपशब्दादि अपमान त्यागकर स्त्रीका अपनी तरह श्रेय चाहकर वर्तना. स्वदारा संतोषि पतिकी तरह समझदार स्त्रीकोंभी अपना पतिव्रत अवश्य पालन करना. जैसें स्वश्रेयपूर्वक

स्व संततिभी सुधारने पावे तैसे स्त्री भर्त्तार दोनुने संप संतोष पूर्वक सद्वर्त्तन सेवनमें सदैव तत्पर रहेना चाहिये. जैसें आगेके वख्तमें अपना पवित्र शील-भूषणासें भूषित बहोतसी सती शिरोमणियेंाने अपना नाम अपने अद्भुत चरित्रसें प्रसिद्ध कीया है, तैसें अबीभी सूविवेकी भाइ और भगिनीये पावन शील रत्न धारनकर सुशीलता योगसें भाग्यशाली होनाही योग्य है.

४८ प्रिय वचन बोलना.

दुसरे मनुष्यकों प्रिय लागे ऐसा सत्य और हितकर वचन बोलना. प्रसंगोपात विचारके कहा हुवा हितमित वचन सामने वालेकों प्रिय होपरुता है. बिना बिचारा, औसर बिगरका, कर्णकटुक भाषण कभी सच्चा हो तोभी अप्रिय होता है, और मीठा, गर्व रहित, विवेकपूर्वक बिचारकें समयोचित बोलाहुवा बचन बहोत प्रिय और उपयोगी होपरुता है. मगर उस्सें विपरीत बोलना अहितकारी होता हैं. जो लोकप्रिय होनेकों चाहते हो तो उक्त

विवेक समालकें धर्मका बाध न आवे तैसा निपुण भाषण करना शीखो. तैसा समयोचित विनय वचन वशीकरण समान समझना. कहाभी है कि 'एक बोलवो न शीख्यो सब शीख्यो गयो धूरमें !'

४९ विनय सेवन करना चाहिये.

नम्रता, कोमलता, मृदुता वगेरे पर्यायवाची शब्द हैं सो सब विनयकेही है. विनय सब गुणोंका वश्यार्थ प्रयोग है. विनयसें शत्रुभी वश होजाता है. विवेकसें गुणिजनोंका कीयाहुवा विनय श्रेष्ठ फल देता है. और विनय बिगरकी विद्याभी फलीभूत नहि होती है.

५० दान देना.

लक्ष्मीवंत होकर सुपात्रादिकों विवेकसें दान देना सोही लक्ष्मीवंतकी शोभा वा सार्थकता है. विवेकपूर्वक दान देनेवालेकी लक्ष्मीका व्यय कीये हुवेभी कुवेके पानीकी तरह निरंतर पुण्यरुप आमदनीसें बढती होती जाती है. विवेक रहित पनेसें व्यसनादिमें उडादेने वालेकी लक्ष्मीका तत्वसें वृद्धि

विनाही तुरत अंत आजाता है. सूम–कंजुसकी लक्ष्मी कोइ जाग्यवान् नरही जुक्तता है–व्यय करकें लाज्न प्राप्त करता है; परंतु ममण शेठकी तरह तिनसें एक दमडीज्नी शुज्न मार्गमें खर्ची नहि जाति और न वो बिचारा तिसको ज्पज्नोगमेंज्नी लेसकता; पूर्वजन्ममें धर्मकार्यकी अंदर गडबड डालनेका यह फल समझकर दानांतराय नहि करना.

५१ दूसरेके गुणका ग्रहण करना,

आप सद्गुणालंकृत हो तदपि संत साधु जन दूसरेका सद्गुण देखकर मनमां प्रमुदित होते है. तोज्नी सज्जनोंकी अंदरके सदगुणोंको देखकर असहनताके लिये दुर्जन ज्लटे दिलमें दुःख पाते है–दिलगीर होते है और अंतमें दुधकी अंदर जंतु ढुंढने मुजब तैसे सद्गुणशाली सज्जनोमेंज्नी मिथ्या दोषारोपण करते है. और जूंठे दूषन लगाकर महा मलीन अध्यवसायसें बावले कुत्तेकीतरह बुरे हालसें मृत्यु पाकर दुर्गतिमें जाते है. अमृतकी अंदर विष बुद्धि जैसे सद्गुणोमें औगुनपनका मिथ्या

आरोप करीभी हितकारी नहि है ऐसा समझकर सुज्ञ जनकों गुणही ग्रहण करना और सद्गुणकी प्रशंसा करनेकी अवश्य आदत रखनी.

५२ औसरपर बोलना.

उचित औसरकी प्राप्ति बिगर बोलनाही नहि. उचित औसर प्राप्त हो तोभी प्रसंग—मोका समालकर प्रसंगानुयायी थोडा और मीठा भाषण करना. बिन औसर और हदसें ज्यादा बोलनेसें लोकप्रिय कार्य नहि होसकता. मगर उलटा कार्य बिगडता है. ऐसा समझकर हरहमेशां सच्चा हितकारी और थोडा—मतलब जितनाही विवेकसें भाषण करनेकी दरकार करना. प्रसंगके सिवा बोलनेवाला बकवादी, दिवाने मनुष्यमें गिनाया जाता है, यह खूब यादीमें रखना !

५३ खल—दुर्जनकोंभी जनसमाजकी अंदर योग्य सन्मान देना.

सिरो लिखित नीति वाक्य सज्जनोंकों अत्यु-

पयोगी है. उक्त नीतिके उल्लंघनसें क्वचित् विशेष हानि होती है. दौर्जन्य दोषके प्रकोपसें खलजन स्हामनेवालेकों संतापित करनेमें बाकी नहि रखता है.

५४ स्व पर विशेषतासें जानना.

हिताहित, कृत्याकृत्य वा बलाबलका विवेकपूर्वक स्वशक्ति देशकाल मानादि लक्षमें रखकर उचित प्रवृत्ति करनेवालेकों हित अन्यथा अहित होनेका संभव है, वास्ते सहसा—बिनशोचे काम नहि करनेकी आदत रख कदम दर कदम विवेकसें वर्त्तनेकी जरुरत है. सद्विवेकधारी (परीक्षापूर्वक प्रवृत्ति करनेवाले)का सकलार्थ सिद्ध होता है.

५५ मंत्र तंत्र नहि करना.

कामन, टोंना, वशीकरणादि करनो करानो ये सुकुलीन जनका भूषण नहि है. वास्ते बने जहांतक तिस बातसें दूर रहेना. और परका मंत्रभेद करना नहि—कीसीका भेद कीसीकों कहेना नहि. और गुफत बात जहां चलती हो वहां खडा रहेना नहि.

५६ दूसरे-पीरायेके घर अकेला नहि जाना.

यह शिष्ट नीति अनुसरनेमें अनेक फायदे है. इस्सें शीलव्रतका संरक्षण होता है, सिरपर जूंठा कलंक नहि चम्हता है; यावत् मर्यादाशील गिनाकर लोगोंमें अच्छा विश्वासपात्र होता है.

५७ कीइ हुइ प्रतीज्ञा पालन करनी.

अव्वल तो प्रतिज्ञा करनेकी वख्तही पूर्ण विचार कर अपनेसें अव्वलसें आखिरतक निन्नाव होसके वैसीही योग्य (बनसके वैसी) प्रतिज्ञा करनी चाहिये. और कन्नी उत्तम जनने प्रतिज्ञा करली तो योग्य प्रतिज्ञाका प्रयत्नपूर्वक पालन करना-नाकमें दम आजानेतकन्नी खंम्मित नहि करनी. विचार करके समजपूर्वक कीइ हुइ लायक प्रतिज्ञा सोही सत्य और शुन्न प्रतिज्ञा गिनीजाति है. तैसी सत्य और शुन्न प्रतिज्ञासें भ्रष्ट हुए मनुष्य अपनी प्रतिष्टाकों खोकर अपवादके पात्र होता है. अविवेक न होने पावे तैसी हरदम फिकर जरुर रखनी योग्य

है. योग्य विचारपूर्वक कीइहुइ प्रतिज्ञा प्राणकी तरह पालनी ये हरेक विचारशील सुमनुष्यकी फर्ज है. सच्चे सत्ववंत पुरुष तो स्वप्रतिज्ञाकों प्राणसेंभी ज्यादा प्रिय गिनकर पूर्ण उत्साहसें पालन करते है. फक्त निर्बल मनके कायर—डरपोक मनुष्यही प्रतिज्ञा खोकर पत गुमाते है.

५८ दोस्तदारसें छुपी बात न रखनी.

जिस मित्रके साथ कायम दोस्ती रखनेकी चाहना हो तो तिनसें कुछभी पटंतर—भेद—जुदाइ नहि रखनी. खाना और खीलाना, मनकी बातें पूछनी और कहेनी, और अछी वस्तु जरुरत हो तो देनी और लेनी ये छः मित्रताके लछन है.

५९ किसीकाभी अपमान नहि करना.

मान मनुष्यकों बहोतही प्यारा लगता है. मानभंग—अपमानसें मनुष्यकों मरणके समान दुःख होता है. यह वार्त्ता बहोतकरकें हरएक जनकों अनुभव सिद्ध होचूकी होगी. कीसीकाभी अपमान न करते तिनका मीठे वचनादिसें सन्मान करनेसें अ-

पन्न और दूसरेकों लान्न होनेका संन्नव है. गुन्हागार मनुष्यकी न्नी अपन्नंगना करने करते तो मीठे-मधुरे वचनसें यदि तिनकों तिनके दोषका स्वरुप पहिले अछे प्रकारसें समझाया जाय तो बहोत करकें पुनः अपराध-गुन्हा करना छोडदेता है. मृडुता यह ऐसी तो अजब चीज है कि तिनसें वज्र जैसा मान अहंकारन्नी पिगल जाता है. यह प्रन्नाव विनय गुणका है; वास्ते दूसरे निक्कमें लरकों उपाय छोडकर यह अजब गुणकाही घटित उपयोग करना डुरुस्त है. ऐसा करनेसें अपना कार्य बहोत स्हेलाइसें पार हो सकता है.

६० अपने गुणोंकान्नी गर्व नहि करना.

उत्तम जन गर्व नहि करते है सो ऐसा समझकर नहि करते है कि गर्व करनेसें गुणकी हानि होती है. संपूर्ण गुणवंत, ज्ञानी, ध्यानी वा मौनी समुड्रकी तरह गंन्नीरतावंत होनेसें गर्व नहि करते है. फक्त अपूर्ण जन होते है सोही अपनी अपूर्णता जाहिर करते है. अपनी बडाइ करनेसें परनिंदाका

प्रसंग सहजहीमें आजाता है. परनिंदाके बडे पापसें, गर्व–गुमान करनेवालेका आत्मा लिप्त होकर मलीन होता है. जिस्सें मिलेहुवे गुणोंकीभी हानि होती है, तो नये गुणोंकी प्राप्तिकेलिये तो कहनाही क्या? (जहां गांठकी मुंडीभी गुमजाती है तो नया लाभ होनेकी आशाही कहांसें होय!) ऐसा समझकर सुज्ञ जन अपने मुखसें अपनी बडाइ वा दूसरेकी लघुता करतेही नहि.

६१ मनमेंभी हर्ष नहि ल्याना.

'बहु रत्ना वसुंधरा' पृथिवीमें बहोतसें रत्न पडे है, ऐसा समझकर आपभी शिष्ट नीति विचारकें आप तैसी उत्तम पंक्तिके अधिकारी होनेके लिये प्रयत्न करना. जहांतक संपूर्णता आजावे वहांतक सन्नीतिका दृढालंबन कीये करना दुरस्त है. यदि किंचित्भी मंद पडकर मनकों छूट्टी दी तो फिर खराबी तैसीही होती है. अल्प गुण प्राप्तिमेंही मनकों दिमागदार बनानेसें गुणकी वृद्धि नहि होती है. बहोतही गुणोकी प्राप्ति होनेपरभी जो महाशय

गर्व रहित प्रसन्न चित्तसें अपना कर्त्तव्य कीया करते हैं वो अंतमें अवश्य अनंत गुणगणालंकृत होकर मोक्षसंपदा प्राप्त करते है.

६१ पहिले सुगम, सरल कार्य शुरु करना.

एकदम आकाशको बगलगिरी करने जैसा न करते अपनी गुंजाश-ताकात याद कर धीरे धीरे कार्य लाइनपर ल्याना, सोही श्यानपनका काम है. एकदम बिगर सोचे सिरपर बडा काम उठा लेकर फिर छोडदेनेका वख्त आजाय और उलटा छोरु-वापन-बेवकूफी सरदारी लेनी पडे उस्सें तो समतासें काम लेना सोही सबसें बहेतर है.

६२ पीछे बडा कार्य करना.

कार्यका स्वरुप समझकर समतासें वो शुरु किये बाद चित्त उत्साहादि शुभ सामग्री योगसें युक्त कार्यकी सिद्धिके लिये पूख्त प्रयत्न करना. ऐसी शुभ नीतिसें कार्य करनेमें अध्यवसायकी विशुद्धिसें उत्तम लाभ प्राप्त होता है.

६४ (परंतु) उत्कर्ष नहि करना.

शुभ कार्य समतासें शुरु करकें तिनकी निर्विघ्नतासें समाप्ति होने बादभी अभिमान या बडाइ जैसा कुछभी करना नहि. मनमें ऐसी श्रद्धा-समझ छ्याकें कोइभी कार्य काल, स्वभाव, नियति पूर्व कर्म और पुरुषार्थ ये पांचों कारण प्राप्त हुवे बिगर होताही नहि, तो वो पांचों कारण मिलनेसें कार्य हुवा तिस्में गर्व काहेका करना चाहिये ? क्यों कि कार्य तो वो कारणोंने कीया है. वास्ते गर्व छोड कार्य सिद्ध होनेसें श्रद्धा-दृढतादि विवेकसें नम्रताही धारण करनी दुरस्त है. वैसे सुनम्र विवेकी जन जगत्के अंदर अनेक उपयोगी शुभ कार्य कर सकते है.

६५ परमात्माका ध्यान करना.

बाह्यात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा ऐसे आत्माके तीन प्रकार है. शरीर कुटुंबादि बाह्य वस्तुओमें व्याकुलतावंत होरहा हुवा बाह्यआत्मा कहा जाता है. अंतरके भीतर विवेक जागृत होनेसें जि-

स्कों गुण—दोष कृत्याकृत्य, लाभालाभका ज्ञान—शुद्धि हुइ हो, स्व परकी समझ पड गइ हो, ज्ञानादि गुणमय आत्मा सोही मैं हुं और ज्ञानादि उत्तम गुण संपत्तिही मेरे सिवाय शरीर, कुटुंब, धन, धान्यादि सब पुद्गलिक वस्तुओं है ऐसा समझनेमें आया हो वो अंतरात्मा कहाजाता है. और जिसने संपूर्ण विवेकसें मोहादि कुल्ल अंतरंग शत्रुओंका सर्वथा उच्छेद करकें विमल केवल ज्ञानादि अनंत आत्मसंपत्ति हाथ कीइ हो सो परमात्मा कहेजाते है. बहिरात्मा, परमात्माका ध्यान करवा नालायक है और अंतरात्मा लायक है. अंतरात्मा, परमात्माका पुष्टालंबनसें दृढ श्रद्धा—विवेक प्राप्तकर आपही परमात्मपद प्राप्त करता है. वास्ते मोह माया छोडकर सुविवेकसें अंतरआत्मापन आदर आत्मार्थी जनोने परमात्माका ध्यानका अधिकार—योग्यता प्राप्त कर निश्चय चित्तसें परमात्माका पद प्राप्त करनेकों प्रयत्न—सेवन करना योग्य है. जन्म, जरा और मृत्युरुप अनंत दुःख—उपाधि मुक्त सर्वज्ञ परमात्मा होवे है. तिनका तन्मय ध्यान योगसें कीट भ्रमर न्यायसें अंतर आत्मा पर-

मात्म पद पाता है. अनंत ज्ञानादि अखंड सहज समृद्धि पाकर परमानंद सुखमें मग्न हो रहता है. तैसे परमात्माकों अक्षय सुखार्थे आत्मार्थी जनोकों हमेशां शरण हो? तैसे परमात्माकी भक्तिरुप कल्पवल्ली भव्य प्राणियोंके भव दुःख दूर कर मनेच्छा पूर्ण करो! यावत् भव्य चकोर शुक्ल ध्यान पाकर भवभवकी भ्रमणा भागकर संपूर्ण निरुपाधि मोक्षसुख स्वाधीन कर अक्षय समाधिमें लीन हो!!

६६ दूसरेकों आत्माके समान जानना.

समस्त जीवोंमें जीवत्व समान है, ऐसा समझकर सबकों अपने जैसा गिनना. द्वैतभाव छोडकर समता सेवन कर किसी जीवकों दुःख न हो वैसे यतनासें वर्त्तन चलाना. चीटीसें हाथी—सब जीवित सुख चाहता है. राजा, रंक, सुखी, दुःखी, रोगी, निरोगी, पंडित मूर्ख सब निर्विशेष—समान रीतसें सुखको अर्थी है. प्रमाद प्रवर्त्तन या स्वछंद वर्त्तनसें कोइ जीवकों सुखमें अंतराय करनेसें वो प्रमादी या स्वछंदी प्राणी बाधक कर्म बांधता है. जिस्का कटुक

फल तिनकों अशुभ कर्मके उदय समय अवश्य सहन करना पड़ता है; वास्ते शास्त्रकार कहते है किः-

" बंध समय चित्त चेतिये शो उदये संताप "

इत्यादि बोध वचनोंकों लक्षमें रखकर सुखार्थी जनोने सर्वत्र समता रखकर रहेना योग्य है. मैत्री, प्रमोद, करुणा और मध्यस्थभावकी प्राप्तिभी ऐसेही होसकती है. जहांतक ये मैत्री वगैरा भावना चतुष्टयका प्रादुर्भाव-उदय हुवा नहि वहांतक शिवसंपदा बहोतही दूर समझनी.

६७ राग द्वेष करना नहि.

काम, स्नेह, अभिष्वंग वगैरा रागके पर्याय शब्द है, और द्वेष, मत्सर, इर्ष्या, असूया निन्दादि रोषके पर्याय है. स्फटिक रत्न समान निर्मल आत्मसत्ताको राग द्वेषादि दोषें महान उपाधिरुप होनेसें विवेकवंत जनोनें यत्नसें परिहरने योग्य है. जहांतक महा उपाधिरुप ये रागद्वेषादि दोष दूर होवे नहि वहांतक कबीभी आत्माका शुद्ध स्वरुप प्रकट होसकता नहि. वो रागादि कलंक सर्वथा टल-हट

गया कि तुरतही आत्मा परमात्मा पद पाता है. वास्ते परमात्मपदके कामीजनोनें शत्रुभूत राग द्वेषादि कलंक सर्वथा दूर करनेकों दृढ प्रयत्न करना जरुरका है. यतः–

" राग द्वेष परिणामयुत, मनहि अनंत संसार, तेहिज रागादिक रहित, जानी परमपद सार. "

(समाधिशतक.)

तथा ए कर्मकलंक दूर करनेके वास्ते संक्षेपसें बालजीवोंके हितार्थ अन्यत्र भी कहा है किः–

" शुद्ध उपयोगने समता धारी, ज्ञान ध्यान मनोहारी; कर्म कलंककों दूर निवारी, जीववरे सिवनारी, आप स्वभावमेंरे अवधू सदा मगनमें रहेना. "

इत्यादि रहस्य भूत ज्ञानके वचनोंको मोक्षार्थी जीवोंकों परम आदर करना योग्य है, जिस्सें सब संसार उपाधीसें सब तरहसें मुक्त होकर पर-

मपद स्वरासें प्राप्त कर शके. सर्वज्ञ भाषित सदुप-
देशका येही सारतत्व है. ज्युं बने त्युं चूंपसें राग
द्वेष मल सर्वथा दूर कर निर्मल हो जाना. राग द्वेष
मल सर्वथा दूर हो जानेसें आत्माकों शुद्ध वीतराग
दशा प्राप्त होती है. तैसी शुद्ध वीतराग दशा सोही
परमात्मा अवस्था है. वो हरएक मोक्षार्थी सज्जनोंकों
राग द्वेषादि मलका सर्वथा परिहार करकें—सद्विवेक
बलसें प्राप्त करनी ही योग्य है. उक्त सर्वज्ञ—उप-
देश रहस्यकों समझकर जो महाभाग्य, रुचि
प्रीतिसें स्वहृदयमें धारेंगे वो सुविवेकी सज्जनकी स-
मीपमें शिवसुख लक्ष्मी स्वेछासें आ क्रीमा करेगी.

श्री सर्वज्ञ प्रणीत स्याद्वादशैलीकों अनुसरकें
पूर्वाचार्य प्रसादिकृत प्रकरणादि ग्रंथोंके आधारसें
आत्मार्थी भव्योके हितार्थ, जो कुछ स्वल्प स्वमति
अनुसारसें यहां कथन करनेमें आया हैं, उसमें मति
मंदतादि दोषोंसें उत्सूत्र—विरुद्ध भाषण हुवा होवे
वो सहृदय—हृदय सुधारकर जिस प्रकारसें जयवंता
जैनशासनकी शोभा बढे, जैसे अनादि अविवेक
दूर हो जाय, और सद्विवेक जागृत होवै, जैसे उ-

रंत दुःखकदायी स्वछंद वर्त्तन छोडकर संपूर्ण सुख-दायी श्री सर्वज्ञ कथित सन्नीतिका सद्भावसें सेवन होवे, जैसें सम्यक् ज्ञान प्रकाससें व्यवहार शुद्ध होवे, जैसें लोकविरुद्ध त्यागसें शुद्ध देव, गुरु और धर्मका अच्छे प्रकारसें आराधन कर, अंतमें अक्षय सुख संप्राप्त होवे तैसें वर्त्तन रखनेकों सज्जनोंकों मेरी अभ्यर्थना है. नाकमें दम आजाने तक भी प्रार्थना भंग नहि करनेकी उत्तम नीतिका अवलंबन करके सज्जन महाशय सत्यका प्रथन करना नही चुकेंगे. उत्तम हंसके समान सज्जन जन गुणमात्र कोंही ग्रहण कर औगुण–दोष मात्रका त्याग करकें जैसें स्व परकी तत्वसें उन्नति साध सके वैसें ध्यान देकें वर्त्तनेकों अवश्य विवेक धरेंगे. आशा है कि, परोपकार परायण सज्जन वर्ग सत्य नीतिकी उंडी नीव डाल उसपर अति उमदा धर्म इमारत बांधकर उस्में कुटुंब सहित नित्य विलास करेंगे. और सम्यग ज्ञान, दर्शन चारित्रका यथाशक्तिसें आराधन कर अंतमें अविनाशी पद पाकर जन्म मरणादि दुःखों-का सर्वथा नाश करेगा. और सर्वज्ञ–सर्वदर्शी हो-

कर लोकालोककों हस्तामलकवत् देखेगा यावत् परम सिद्धिदायक परमात्मपद प्राप्त कर पूर्णानंद चिद्रूप हो रहेगा. इत्यलम्.

प्रकरण पांचवा.

" सामायकादि षड् आवश्यक–तिन्के पवित्र हेतुयुक्त. "

१ सामायिक, २ चउविसत्था, ३ वंदनक, ४ प्रतिक्रमण, ५ काउस्सग्ग, ६ और पच्चख्काण यह छः आवश्यक (अवश्य करने लायक) साधु, साध्वि, श्रावक और श्राविकाकी नित्यकरणी है. वो हरएक के पवित्र हेतु हृदयमें धारण कर उपयोग पूर्वक करनेमें आवे तो उस अभ्यासके बलसें अमृत समान स्वाद दे के आत्माकों शांत अमृत रसलीन बनाकर अंतमें अमृत–मोक्ष पदकों अवश्य दिलाते है.

१ सामायक सावद्य (पाप) व्यापारका त्याग कर मन वचन और शरीरकों संवर (नियममें रख-

कर) जघन्य (कममें कम) दो घडी और उत्कृष्ट (सर्वथा) जीवित पर्यंत समभाव—समताकों आ-दर ज्ञान ध्यानमें तल्लीन रहेना. सो पहिला सामा-यक आवश्यक कहाजाता है. उस्सें चारित्राचारकी —विशुद्धि होती है, अविरतिपन दूर होता है और लेश्या निर्मल होती है. गृहस्थ होवे तदपि अवकाश प्राप्त होनेसें (जितना वख्त हाथ लगे उतने वख्त तक) सामायक पौषधादिकका बार बार अभ्यास करते हुवे समभावको सेवन करनेवाला साधु समा-न गिनाता है; वास्ते प्रमाद रहित अवकाश योगसें सामायकका सेवन करना

२ चउविसथ्था. यह दूसरा आवश्यक २४ जिनोंका अति अद्भुत गुण कीर्त्तनरुप होनेसें भ-विक जीवोंकों दर्शनाचार (समकित) की शुद्धिके लीये होता है—उस्सें समकित निर्मल होता है.

३ वंदनक. गुरु गुणसें युक्त ऐसे साक्षात् गुरु आचार्य महाराज वगैरा, और तैसे गुरुके वियो-गसे तैसे गुणवंत गुरुकी स्थापनाके समक्ष द्वादशा वर्त वंदना करते हुवे गुरुमहाराजके निर्मल ज्ञान

दर्शन और चारित्र गुणकी अनुमोदनाका अपूर्व लाभ पानेसें ज्ञानाचारादिकी शुद्धि होती है.

४ प्रतिक्रमण—अपनी मूल धर्म मर्यादामें पीछा आनेरुप, मूलगुण या उत्तरगुणमें लगे हुवे दूषणोंकों आलोचकर—निंदकर शुद्ध होनेके वास्ते अनुष्ठान विशेष प्रतिक्रमण चौथा आवश्यक है. जैसें शरीरमें पडे हुवे व्रणकों दुरुस्त होनेकों मल्लहम पट्टी कीजाति है, तैसें ग्रहण कीये हुवे व्रत नियमोंमें लगे हुवे अतिचारादि दूषण दूर करनेके वास्ते प्रतिक्रमण क्रिया करनेकी जरुर है. जैसें निर्मल वस्त्रपर पडे हुवे दाग—धब्बे उपायसें नीकालनेमें आते है, तैसें व्रतादिकके धब्बे दूर करनेकों यह क्रिया है. विधिवत् प्रतिक्रमण करनेकों दरकारवाले जीवकों वो वो आचारकी शुद्धि होती है. अन्यथा होती नहि है.

५ काउस्सग्ग—अतिचार आदिक दूषणकी बहुलतासें—या चाहियें वैसी परिणामकी शुद्धि—उपयोगकी खामीसें प्रतिक्रमण द्वारा जो शुद्धि नहि हो

सकती है वैसी मन वचन कायाके योगकों संवरकर परमात्माका एकाग्रतासें स्मरण करते सहजही शुद्धि हो सक्ती है.

६ पच्चख्काण—समझकर पापका परिहार कर उत्तम अभिग्रह यथाशक्ति आदरनेसें तपाचार, वीर्याचार वगैरा सब आचारकी शुद्धि होती है; वास्ते वो अवश्य अंगीकार करने लायक है. समता पूर्वक यथाशक्ति व्रत पच्चख्काण अंगीकार करकें जो महाशय उनकों अखंड आराधते है, वो सब संपत्ति—स्वर्गापवर्ग भी वश्य कर सकते है. ऐसे संक्षेप रुचिकों समझनेके लिये यत्किंचित् लेखसें छवं आवश्यकोंका स्वरुप कहा उन्के विशेष हेतु प्रयोजन गुरु गम्य जाणकर—अवधारकर आजकल बहुधा प्रवर्त्तन होते अविधि दोषकों दूरकर गतानुगतिकता मात्र छोडकें, जीससें अवश्य स्वश्रेय सिद्ध कीया जावे, वैसी रुचि—प्रीति भक्तिसें उक्त आवश्यक क्रिया करनेके वास्ते आत्मार्थी जीवकों प्रतिदिन तत्पर रहेना. विधि बहोत मानसें, श्री जिनाज्ञा पूर्वक करनेमें आती नित्य करणीसें आगे पैदा हवा भाव

हठ जाता नहि, इतनाही नहि, मगर अपूर्व भाव (परिणाम) प्राप्त होनेसें आत्माकों महान् लाभ मिलता है. इत्यलम् .

प्रकरण ७वा.

श्री जैनपर्व–तिथियें.

कातिक शुक्ल १ श्री गौतम केवलज्ञान कल्याणक.
,, ५ सौभाग्य–ज्ञान पंचमी.
,, ८ चातुर्मासी अठाइकी शुरुवात.
,, १४ वर्षा चातुर्मासी और अठाइकी पूर्णाहूती.
,, ,, चातुर्मासी प्रतिक्रमण.
,, १५ द्राविड और वारीखिल्ल १० क्रोड मुनियोंके साथ श्री सिद्धगिरिपर सिद्धिपद पाये. (श्री शत्रुंजय तीर्थराजकी यात्रा तिथि.)
अगहन शुक्ल ११ मौन एकादशी (१५० कल्याणकको तिथि.

पूस कृष्ण १० पूस दशमी (श्री पार्श्वनाथजीका जन्म क.)

" " ११ श्री पार्श्वजिन दीक्षा कल्याणक.

माघ कृष्ण १३ मेरुतेरस (श्री अष्टापदजीके उपर श्री आदीश्वरजीका निर्वाण.)

फागुन शुक्ल ७ फागुन चातुर्मासी अठाइका पहिला दिन.

" " ८ श्री सिद्धाचलजीकी यात्राका दिन (श्री आदीश्वरजी उसरोज पूर्व निन्नाणु वार आकर समोसरे.)

" " १४ चातुर्मासी अठाइकी पूर्णाहूती-चौमासी प्रतिक्रमण तिथि.

चैत कृष्ण ८ श्री ऋषभजिन दीक्षा कल्याणक वर्षितपका पहिला दिन, और श्री केसरीयाजीमें (धूलेवेमें) महोत्सव.

चैत शुक्ल ७ आयंबिलकी उलीका पहेला दिन.

" " १५ " " पूर्णाहुतीका दिन.

" " " श्री पुंडरीकगिरिकी यात्रा तिथि. (उस दिन श्री पुंडरीक गणधर

पांच क्रोड मुनियोंके साथ सिद्धि पद पाये.)

वैशाख शुक्ल	३	अक्षय तृतीआ. श्री वर्षी तपको पारणेका दिन (उस दिन श्री आदिश्वरजीने वर्षी तपका पारणा कीया.)
अषाढ शुक्ल	७	चातुर्मासकी अठाइका पहिला दिन.
,, ,,	१४	चौमासी प्रतिक्रमण तिथि.
भादौ कृष्ण	१२	अठाइधर—पर्यूषण पर्वकी (पर्यूषण अठाइकी) शुरुवात.
,, ,,	०))	कल्पधर (कल्प सूत्रकी वाचना.) की प्र. दि.
भादौ शुक्ल	१	श्री महावीरजीका जन्मोत्सव (श्री कल्प सूत्रांतर्गत.)
,, ,,	२	तैलाधर (अठम) संवत्सरी संबंधी तप शुरु करनेका दिन.
,, ,,	४	संवत्सरी—वार्षिक पर्व (संवत्सरी प्रतिक्रमणका दिन—श्री कालिकाचार्यका आचारणासें)

,, ,, ८ दूसरी अष्टमी.

कुंवार शुक्ल ७ आयंबिलकी उलीका पहिला दिन.

,, ,, १५ ,, ,, पूर्णाहुती.

कातिक कृष्ण ,, श्री वीर प्रभुजीका निर्वाण कल्याणक दीवालीका दिन.

ऐसे पर्वके दिनोंमें यथाशक्ति छठ, अठम, उपवास, आयंबिल, नीवी, एकाशनादिक तप, जप, सामायक, पूजा, पौषध, प्रतिक्रमण वगैरा अवश्य कृत्य आदरणीय है.

प्रकरण सातमा.

रात्रि भोजन त्याग.

भाविक गृहस्थोंको रात्रिभोजनका सर्वथा त्याग करनाही योग्य है. बनते तक तो रात्रिमें चउविहार रखना. मगर ऐसा न बनसके तो तिविहार डुविहार तो अवश्य रखना. अशन, पान, खादिम और स्वादिम ये चारों प्रकारके आहार है जिस्से भूखकी शांति—तृप्ति होवे उस्को अशन कहाजाता है, जिस्से तृषाकी शांति होवे उस्को पान कहा जा-

ता है, जिस्से कितनेक अंशोंसें क्षुधादिकी शांति होवें ऐसे ञूने हुवे धान्य फल केले वगैरे खाना उ-स्कों खादिम कहा जाता है और शुंठ, जीरा, अज-मा वगैरे स्वादिष्ट वस्तुयोंका सेवन करना उस्कों स्वादिम कहा जाता है. यह चारों प्रकारके आहार-का त्याग (चौविहार) जो ञाग्यशाली जन करता है, उन्को दर महीने पंद्राह उपवासका फल प्राप्त होता है. मुख्य करकें सूर्यास्त पहिलें दो घमीसें सूर्योदयके पीछेकी दो घमी तक वो. नियम (चौ-विहार) दृढतासें पालना योग्य है. ऐसो वर्त्तनसें एक वर्षमें छ महीनेके उपवासोंका फल—लाञ ऐसे दृढव्रतधारीकों सहजहीमां हांसिल होता है. इस्से प्रतिरोज संतोष गुणकी प्राप्ति होनेपरञी असंख्य जीवोंकों अञयदान साथ अपनाञी किमती जान-का बहोतही बचाव होता है. इस्सें विपरीत वर्त्तने वाले स्वच्छंदी लोग असंतोषधारक अनेक जीवोका संहार करते हुवे कितनी दफै अपनाही प्रिय प्राण-कोंञी जोखममें मால देते है. वास्ते स्वपरहित—चा-हनेवाले हर एक सद्गृहस्थोंकों रात्रिञोजनका अ-

वश्य त्याग करनाही चाहियें.

मोक्ष मार्गकाही फक्त साधन करनेवाले साधु, यति, निर्ग्रंथ, अणगारोंकों तो वो हरहमेशां सर्वथा प्रकारसें वर्जीतही है. उन्कों तो प्राणका अंत आने तकभी रात्रिभोजन करना घटित नहि है. दिन होने परभी अंधेरेमें या सकरे (छोटे मुंहवाले) बरतनमें भोजन करना वोभी वैसाही दोषित है. वास्ते दिनमें अछा उजाला जहां हो वहांही जीवोंकी यतना हो सके वैसे चोडे मुंहके बरतनमें (पात्रमें) भक्ष्याभक्षका विवेक पूर्वक मौनतासें (छूंगे मुंहसे बातचित न करते) भक्ष्य (भोजन) में कोइभी सजीव या निर्जीव (जीवका) कलेवर न आ जाय वैसा स्थिर चित्त रखकर, आंखोंसें बराबर तपास करकें उपयोगसें ही हितमित (पथ्य और प्रमाणोपेत) भोजन अंगीकार करना. परंतु विषय लालसासें चाहे वैसी स्वादिष्ट वस्तु हो तो भी प्रमाणकी बहार—हदसें ज्यादे होवे उतनी ग्रहण नही करनी. और कुपथ्य (शरीर प्रकृतिकों प्रतिकूल) भोजन भी कदापि करना नहि. इस तरह विवेकसें वर्त्तने

वाले शख्स स्वधर्म कर्म सुखसें साध सकते है. लेकिन इस्सें विपरीत वर्त्तने वालेके बहोत दफे बुरे हाल होते हुवे नजर आते है. वास्ते उक्त हितशिक्षा हृदयमें धारण करकें प्रमादकों छोड उक्त नीतिसें चलनेकी दरकार करनी.

प्रकरण आठवा.

"पढा तो सही, मगर विचारशून्य रहा!"

कोइभी शख्सकों जानपना प्राप्त हुवा तोभी अविवेक छोडकर सद्विवेक आदरता नहि—उन्मार्गकों छोड सन्मार्ग ग्रहण करता नहि उस्का ज्ञातपन गधेपर लदे हुवे चंदनके बोजे जैसा मिथ्या क्लेशरुपही समझना. जैसें गधेकों चंदन बोजा रुपही है—कुछभी शीतलताके लिये नहि तैसें वैसे अविवेकी गधे जैसे जनोकोंभी वो ज्ञान बिलकुल बोजारुपही है—कुछभी हितकारी नहि. पवित्र जैन शासनमें ऐसा आग्रह नहि है कि बहोत ज्ञात हुवा हो

उस्काही कल्याण होता है, मगर दूसरेका नहि होता है. परंतु इतना तो साफ फरमान है कि कम और ज्यादे पढकर विवेकपूर्वक विचार करकें कार्य करे उस्का कल्याण होवे. पढकर विचारवंत हुवा उस्कोंही कहाजाता है कि गुरुके मुखसें शास्त्र श्रवण करके या बांचकरकें उस्का बरोबर–पूरापूरा निश्चय कर सुविवेक आदरकें अहित मार्गका सर्वथा त्याग कर हितकारी मार्गकोंही सेवन करनेमें आवे, उस्मे (हित सेवनमें) जिस्की उपेक्षा हो. वो पढा मगर विचारशून्यही रहा है, ऐसा मुकरीर समझना. दृष्टांत–जैसें विष मृत्यु देता है और अमृत जीलाता है ऐसा जानता है तोभी अमृतकी अवगणना कर विष भक्षण करे वो अवश्य मरणके शरणही होता है.

———(०)———

प्रकरण नवमा.

नवकार महामंत्र.

जो महामंत्रके फक्त नव पद और हर्फ ६८ है. वो नवकार मात्रकाभी यदि सरहस्य सद्विवेकसें

स्मरण करनेमें आवे तो तैसे भाविक सज्जन जन उससें अतुल फायदा—लाभ संपादन कर सकते है.

उक्त नवकार मंत्र अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सब साधुरुप पंचपरमेष्ठिके नमस्कारुप होनेसें सर्वोत्कृष्ट गिनाता है. तीन भुवनमें प्राधान्य परमेष्ठिके परम आदरपूर्वक प्रणामरुप नमस्कार मंत्र चौदा पूर्वका तत्व मानाजाता है. साफ दिलसें नवकार मंत्रका एक वख्त स्मरण करनेसें ५०० सागर प्रमाण पाप प्रलय होता है. तो त्रिकरण (मन वचन और काया) की शुद्धिसें बार बार उक्त महामंत्रका स्मरण करनेका श्रेष्ठ फलका तो कहेनाही क्या? उत्कृष्ट भावसें नव लाख नवकार गिन्ने—जपनेसें जगजयवंत जिनवर पद्दी पावे वैसे अनेक अधिकार शास्त्रोंमें नजर आते है. वास्ते उक्त महामंत्र दुनियांमें श्रेष्ठ गिनाता हुवा (चिंतामनिरत्न वगैरा) समस्त पदार्थोंसेंभी ज्यादे आदरसें सेवन करने लायक है. उक्त महामंत्रका स्मरण सुविवेकी जनोंको क्षण क्षण और पल पलमें करनाही

योग्य है. एक क्षणमात्रभी उन्कों भूलजाना योग्य नहि है. पहिले पदसें काम, क्रोध और मोहादिक, महाशत्रुयोंका निकंदन करनेवाले अरिहंत, भगवान्कों, दूसरे पदसें आठ कर्मके बंधनसें सर्वथा मुक्त हुवे सिद्ध भगवानकों, तीसरे पदसें पंचाचार पालने वाले प्रवीणतादि ३५ गुणालंकृत आचार्य महाराजकों, चौथे पदसें अंग उपांगके अध्ययन अध्यापनादिक २५ गुणसें विभूषित उपाध्यायकों और पांचवे पदसें छः व्रत (पांच महाव्रत और रात्रिभोजन विरमण सहित) पालनेवाले, छ काय रक्षकादि २७ गुणयुक्त साधु मुनिराजकों सम्यग् (त्रिकरण शुद्धिसें) नमस्कार हो. ऐसे अगाडीके पांच पदोंका सामान्यतासें परमार्थ समझना. पीछाडीके चार पदोंका परमार्थ समझनेसें ये महामंत्रका अचिंत्य प्रभाव सहजमें समझाजावे उसलिये वो चारों पदोंका भावार्थ कहेनेकी जरुरत है. भावार्थ यह है कि ये आगे कहेहुवे पांचों पदोंसे करेहुवे (परमेष्ठीकों) नमस्कार समस्त पापोंका सर्वथा नाश करनेकों शक्तिमान है, और सब प्रकारके मंगलमें पहिले मंग-

स्वरुप है. वास्ते सब सुखार्थी जनोंको अवश्यावश्य आदरने योग्य है.

प्रकरण दशवा.

उत्तम गुण ग्रहणता.

हंसके समान तत्वग्राही स्वभावसें गुण प्राप्ति, और शुकर जैसे बुरे स्वभावसें दोष प्राप्ति होती है; गुणगुणीके शुद्ध रागसें गुण–लाभ और दोष–दुष्टके अशुद्ध रागसें गुण हानि होती है. तात्पर्य कि उत्तम गुण–गुणी प्रति शुद्ध प्रेमभाव बिगर कदापि कोइभी आत्माकों उत्तम गुणोंकी प्राप्ति नहि हो सकती. उत्तम गुण प्राप्त करनेके अधिकारी फक्त वोही है कि जो आप उत्तम गुणरागी हो उत्तम गुण ग्रहण कीये करता है. अनंत गुणी अरिहंतादिक परमात्माका और सम्यग् रत्नत्रयीके आराधक आचार्य प्रमुख पवित्र आत्माउका अहर्निश स्मरण, दर्शन, पूजन, भक्ति बहोत मानादि करनेका प्रयोजन येही है कि अपनी आत्म परिणति भी शुद्ध अभ्यासके

बलसें अंतमें तदाकार—तैसीही होवे, ये हेतुके लिये अपनी वृत्ति पूरेपूरी उत्तम गुण ग्रहण सन्मुख ही चाहियें, विमुख तो चहियें ही नहि. अपन भक्त अनंत गुणवंत अरिहंतादिककी सन्मुखता किस प्रकारसें भज लेनी चाहिये कि जिस्सें उन्के अनंत गुणी आत्माका अपना आत्मा आबेहुब तसवीर देख शके. (१) अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत (स्वभाव) रमण और अनंत वीर्यरुप अनंत आत्म (परमात्म) गुण प्राप्त—प्रकट करकें सब दोषोका दलन कर देव निर्मित समवसरणमें विराजमान हो जिस जिस प्रकारसें दोष मात्रका दलन, और गुण मात्रका अमोघ मिलन होवे वो वो निर्दोष मोक्षमार्गका आपही सेवन करकें भव्य जीवोंके एकांत हितकी खातिर अमृत समान मीठी वाणिसे स्याद्वाद मार्गका निरुपण कथन कर अनेक भव्य सत्वोकों धर्म मार्गमें साक्षात् स्थापन करकें स्वतीर्थंकर पद सार्थक करते है. ऐसो अनुपम अरिहंत देवकी परोपकार वृत्ति दिलमें धारण कर अपन भी अपना वीर्य स्फुरायमान्—फैलाके अरिहंत देवकी अमोघ आज्ञाका

यथास्थित आराधन करकें स्व मनुष्य भवादिक दुर्लभ सामग्री सफल करनी योग्य है-

ऐसें स्वच्छंदता छोडकर यथाशक्ति अरिहंत प्रभुकी अमूल्य आज्ञाका आराधन करतें करते क्रमसें अभ्यासना बलसें आत्म परिणति शुद्ध-शुद्धतर होती जाती है. अंतमें अभेद बुद्धिसें अरिहंतकी उपासना करतें उपासक (सेवक) आपही उपास्य (उपासना करने योग्य) बनजाता है. अर्थात् 'कीटभ्रमरी' के न्यायवत् आपही अरिहंत रूपही होता है.

(२) समस्त कर्मोंका सर्वथा क्षय करकें उक्त न्यायवत् सिद्ध हुवे सिद्ध भगवान्की उन्के पवित्र कदमानुसार चलनेसें-उन्के उदार चरित्रोंकों सम्यग् सेवनेसेही समस्त स्वकर्मका क्षय कर अनंत, अक्षय, अव्याबाध अगुरु, लघु, अपुनर्भवरुप सहज आत्म समाधि सुख संप्राप्त करके श्री सिद्धपदकी उपासना करतें करतें संपूर्ण आराधना कर स्वकार्य सिद्ध करते है. बात भी यही दुरस्त है कि समर्थ स्वामिकों पाकर (भेट कर) सेवक भी अपने स्वामि समान स्वभावकों आदर अपने स्वामिकी तु-

ध्यताकोंही पाता है, और सत्य प्रमाणिक समर्थ स्वामिभी वोही गिनाता है कि उदार आशयसें सेवारसिक सेवककों अपने समानही बना देवे. कोइ भी तरहका भेदभाव नहि रक्खै, और अभेद भावसें सिद्ध भगवंतकी भक्ति करने वाले भक्तजन इसी प्रकार सिद्ध स्वरूपकों निःशंसय प्राप्त कर सकतेही है.

(३) निर्मल ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्यरुप पांचों–आचारमें प्रवीण और अन्य आत्मार्थिजनोंकोंभी उक्त उत्तम आचारमें प्रवर्त्तानेवाले है तदपि निस्पृहतादिक अनेक गुणयुक्त आचार्य महाराजकी निर्मल सेवाका फल यही है कि अपनी अनादिकी कुचाल समझकर सर्वथा सुधारकर सुचाल–सदाचार सेवन करनेकों हमेशां कटिबन्ध होना.

(४) अर्थसें अनंत ज्ञानी–अरिहंत निरुपित और सूत्रसें गणधर गुंथित–रचित् द्वादशांगी अंतर्गत आचारांगजी प्रमुख ११ अंग और उववाइजी प्रमुख १२ उपांगके धारक होकर उक्त सूत्र अध्ययन करनेको समीप आते पथ्थर जैसे जड़–अविनीत

शिष्योंकों सूत्रधारासें नवपल्लव—सुविनीत और सु-अधीत करनेकों समर्थ उपाध्याय महाराजकी उत्तम सेवा प्राप्त कर विनयादिक अनेक गुणगण धारण करनेमें हरहमेशां उद्युक्त रहेना.

(५) सद्विवेकसें समस्त सांसारिक उपाधि छांडकर सम्यग् ज्ञान दर्शन और चारित्ररुप रत्नत्रयी आराधनेमें तत्पर और मोक्ष सुखार्थी भव्य जनोकों यथायोग्य चहिये वैसा धर्मोपदेशादिकसें सुसहाय देनेमें तत्पर सुसाधु संतकी सेवा पूर्व पुन्य योगसे प्राप्त कर पापकारक पांचों प्रमादकों परिहार करकें सुविवेकी सज्जन तत्व रहस्य पाकें अवंचक (मन वचन और कायाके) योगसें अवंचक क्रिया आराधकर अवंचक—मोक्ष फल अवश्य मिलाना—हाथ करना. सच्चमुच मोक्षमार्गके साधनेवाले सुसाधु निर्ग्रंथ महात्मनोंकी निर्दंभ सेवा—भक्ति करनेकों तत्पर भक्तजन होवे उनकों साक्षात् कल्पवृक्ष समान फलीभूत होते है. एक दरिद्री—निर्धन मनुष्यभी उक्त साधुकी सच्ची सेवासें साधुताकों पाकर चक्रवर्तिकोंभी पूजने योग्य होता है. ऐसें—इस प्रकार

पांचों परमेष्ठीकी पवित्र भक्तिसें सुविवेकी जन अपने आत्माकों पवित्र कर उज्वल धर्म और शुक्ल ध्यानके बलसें पांचवी गति मोक्ष—मुक्ति योग्य अवश्य क्रीया करे, जिस्सें अंतमें अपना पवित्रात्मा पूर्णानंद परमात्म दशाकों साक्षात् प्राप्त कर शाश्वत लोकाग्रमें स्थित मुक्तिधामकों अलंकृत करे. इतिशम्.

प्रकरण ग्यारवा.

विविध विषय संग्रह.

१ जानने लायक बातें—षट्द्रव्य, चार निक्षेप, सप्तभंगी, आठ कर्म, नवतत्त्व और चार प्रमाण ये बाते जैनी महाशयोंको खसूस करके जाननी चाहियें.

२ दश दृष्टांतसें मनुष्य जन्म पाना दुर्लभ है उन्के नाम चुलग, पासा, धान्य, जुगार, रत्न, स्वप्न, चक्र, कछुआ, धुंसर (बहलके खंधेपर गाभा जोतनेके

वख्त रक्खा जाता है वो) धुंसरखीली, और परमाणु ये दश है.

३ मकानके अंदर उत्कृष्टतासें दश चंद्वे–चंदनीयें बांधनी चाहिये सो कौनसी ? पौषधशालामें कि जहां सामायक प्रतिक्रमणादि धर्मक्रिया होती हो वहां १, भोजन करनेकों बैठे वहां २, रसोइखानेमें चुलेपर ३. पनिहारेमें ४, सोनेकी जगामें ५, चक्कीके उपर ६, छांश करनेकी जगह ७, उखल–खांडनेकी जगह ८ जिनमंदिरमें ए और एक फालतु हमेशां रखना चाहिये कि जहां जिस वख्त जरुरत होवे वहां उन्का उपयोग किया जावे. १०

४ चार शरणके नाम–अरिहंतजीका, सिद्ध महाराजजीका, सब साधुओंका और केवली प्ररुपित धर्मका ये चार है.

५ आठ बातें दुर्लभ है उन्के नाम–मोहनीय कर्मका क्षय करना १, जिव्हाकों कब्जे रखनी २, मनोयोगकों जीतना ३, युवावस्थामें शील पालना ४, कायर–डरपोककों साधुपना पालना ५. कृपणकों दातव्य बुद्धि प्राप्त होनी ६, अभिमानीकों क्षमा–

सहनशीलता रहेनी ७ और तरुणावस्थामें इंद्रियोकों वश्य करनी ८. ये बाते बहोत मुश्केल है.

६ दयाके आठ बोल—जैसें डरपोककों शरणका आधार, पक्षीकों आकाशका आधार, तृषावंतकों पानीका आधार, क्षुधितकों भोजनका आधार, समुद्रमें डूबते हुवेकों पाटियेका आधार, चतुष्पद (ढोर पशु) कों स्थानकका आधार, रोगीकों औषधका आधार, भूलेहुवेका वाहन आधार है, तैसे भव्य जीवकों दया धर्मका आधार जानना.

७ शीक्षाके आठ बोल—दया पाले वो दानेश्वरी, धर्माचार पाले वो ज्ञानी, पापोसें डरता रहे वो पंडित, पांचों इंद्रियोकों वश्य करलेवे वो शूरवीर, सत्य वचन बोले वो सिंह समान, परोपकार करे वो धनवंत, कुलक्षणोका त्याग करे वो चतुर और निर्धनसें मित्रता निवाहे वो मित्र कहाजाता है.

८ श्रावककों सात धोतियें रखनी चाहिये सो कौनसी कौनसी ? सामायक प्रतिक्रमण वख्त पहेन्नेकी १, देवपूजाके वख्त पहेन्नेकी २, भोजने वख्त पहेन्नेकी ३, बाजारमें पहेनकर हिरने फिरनेकी ४,

सोते वख्त शय्यामें पहेन्नेकी ५, पूजाके वख्त पहे-नकर स्नान करनेकी ६, और टट्टी जानेके वख्त पहेन्नेकी ७. इस मुजब ७ है.

९ चार विकथाओंके नाम—स्त्रीकथा, भोजन कथा, राजकथा और देशकथा ये ४ है.

१० पांच समवायके नाम—कालवादी, स्वभाव वादी, नियतवादी, पूर्वकृत कर्मवादी और पुरुषाकार वो उद्यमवादी.

११ श्रावककों हमेशां चौदा नियम धारण क-रनो वो कौनसे है? सचित्त वस्तुओंका परिमाण करनी कि आज इतनीही सचित्त वस्तु काममें ल्युंगा. द्रव्य, विगय, उपान—जूते, तांबुल, वस्त्र पुष्पभोग, वाहन, शय्या, विलेपन, बह्मचर्य, दिशि स्नान और खानपान वगैरांका निरंतर फजरमें उठकर परिमाण धारण कीया करे.

१२ तेरह काठिये याने धर्ममें अंतराय करने-वाले है उनके नामः—आलस, मोह, अवर्णवाद, अ-हंकार, कोध, निद्रा, कृपणाता, गुरुभय, शोक, अज्ञान, अस्थिरता, कुतूहल देखना और तिव्र विषयाभिलाष

ये तेरह काठिये है.

१३ पांच प्रकारके मिथ्यात्वोंके नामः—अभिग्रहीक—सच्चे झूठेकी परीक्षा कीये बिगर अपनी मतिमें आया सोही माने वो १ अनभीग्रहीक—सभी धर्म अच्छे हैं. सभी दर्शन अच्छे है. सबकों वंदन करे, काहेकों किसीकों निंदे ऐसे विष अमृत समान गिने वो २, अभिनिवेशिक—जानबूझकर झूठा बोले, अपनी अज्ञानतासें भूल पडे तोभी झूठी प्ररुपणा करे और कोइ समकित दृष्टि समझावे तो हठ नहि छोडे वो ३ सांशयिक—जिनवानीमें संशय रक्खे याने अपने अज्ञानसें सिद्धांतके अर्थ समझ सके नहि उससें अस्थिर रहे वो ४, और अनाभोगिक—अन्जानतें कुछ समझे नहि वो, वा एकेंद्रियादि जीवकों अनादि कालका लगता है वो ५.

१४ समवसरणकी बारह पर्षदाके नाम—१ गणधरकी, २ विमानवासि देवांगनाओंकी, ३ साध्वीओंकी—ये तीन अग्नि कौनमें बैठे. योतिषियोंकी देवीकी, व्यंतरकी देवीकी, भुवनपतिकी देवीकी—ये तीन नैऋत्य कौनमें बैठे. ६ योतिषी देवोंकी, व्यंतरदेवोंकी

भुवनपति देवोंकी ये तीन वायव्य कौनेमें बैठें. ए, और वैमानिक देवोकी, मनुष्यकी, मनुष्य स्त्रीयोंकी- ये तीन इशान कौनेमें बैठें. १२.

१५ चक्रवर्तीके चौदह रत्नोंके नाम—चक्र, छत्र चर्म, दंड खड्ग, मणि, कांगणी (यह सात रत्न एकेंद्रिय है) सेनापति, गाथापति, सूत्रधार, पुरोहित, स्त्री, अश्व और गज (येह सात पंचेंद्रिय हैं) ये दोनु मिलकर चौदह हुये.

१६ चौदह प्रकारके भय—हस्ति, सिंह, सर्प, अग्नि, पानी, राजा, चोर, इहलोक, अकस्मात्, अपयश, अपकीर्ति, परलोक, वेदना और अकाल मरण ये १४ भय है.

१७ पांच सम्यक्त्वके नाम—क्षायिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक, सास्वादन और मिश्र.

१८ सिद्धके ३१ गुण—छः संस्थान रहित, १ शरीर रहित, ५ रस रहित, ३ वेद रहित, २ गंध रहित, १ जन्म रहित, ५ वर्ण रहित और ८ स्पर्श रहित. प्रकारांतरसें फिर दूसरे ३१ गुण इस मुजब कहे गये हैं. ५ प्रकारके ज्ञानावर्णीय कर्म रहित, ए

प्रकारके दर्शनावर्णीय कर्म रहित, २ प्रकारके वेद-नीय कर्म रहित, २ प्रकारके मोहनीय कर्म रहित, ४ प्रकारके आयु कर्म रहित, २ प्रकारके नाम कर्म रहित, २ प्रकारके गोत्र कर्म रहित, और ५ प्रकारके अंतराय कर्म रहित ये ३१ गुण है.

१७ छः भाषाओंके नाम–संस्कृत, प्राकृत, सौ-रशेनी, मागधी, पैशाचिकी और अपभ्रंशी ये छः है.

२० षट्दर्शनके नाम–जैन, मिमांशक, बौद्ध, नैयायिक, वैशेषिक और सांख्य ये छः है.

२१ चौदह गुणठाणेके नाम–मिथ्यात्व, सा-स्वादन, मिश्र, अविरति सम्यगदृष्टि, देशविरति, प्रमत्त, अप्रमत्त, निवृत्ति, अनिवृत्ति बादर, सूक्ष्म सं-पराय, उपशांतमोह, क्षीणमोह, सयोगी केवली और अयोगी केवली ये चौदह हे.

२२ चार कारण–निमित्त, उपादान, असाधा-रण और अपेक्षा–ये चार हे.

२३ सात क्षेत्रोंके नाम–साधु, साध्वी, श्राव-क, श्राविका, ज्ञानभंडार, जिर्णोद्धार और जिन-बिंब–ये ७ है.

२४ पर्यूषण पर्वमें श्रावक ज्ञाइयोंकों इतने धर्मकार्य अवश्य करनेही चाहियें–याने आठ दिन तक किसी जीवकों कोइज्ञी न मारे वैसा ढंढेरा पिटवाना चाहिये. यथाशक्ति उपवास–छठ–अठमादि तप, जप करना चाहिये. आठ दिनतक सुपात्रकों अविछिन्न–हरदम दान देना चाहिये. साधर्मि–स्वामिज्ञाइयोंमें सुपारी, नारियल, द्राक्ष, मिसरी इत्यादि वस्तुओंकी प्रज्ञावना करनी चाहिये. श्री वीतराग देवकी प्रतिमाकी पूजा करनी–चैत्य परिवाडी करनी चाहिये. सब साधु साध्वीओंकों वंदना करनी चाहियें. श्री संघ ज्ञक्ति करनी चाहिये. सचित्त परिहार, शीलपालना, सब तरहके आरंज्ञ–पाप कर्मोंका त्याग, स्वज्ञक्ति मुजब सन्मार्गमें ड्व्यकाव्यय, ज्ञानज्ञक्ति, अज्ञयदान, कर्मक्षय निमित्त काउस्सग्ग, हमेशां दो टंक प्रतिक्रमण, ज्ञारी महोत्सव, कल्प सूत्र बांचने वालेका आहार पानी वगैरासें सहायता दे सुख समाधिकी खबर लैनी, श्रीसंघकों परस्पर–एक दूसरेकों खमत खामणे करने, ज्ञावना ज्ञावनी, और एक चित्तसें संपूर्ण कल्पसूत्र सुनना

चाहियें कल्पके समान जो भव्यजीव होवे सो कल्प सूत्र सुने. और वो विधिपूर्वक सुननेवाला पुरुष १२ देवलोकमें जाकर सुरके सुख भुक्ते. परंपरासे आ- ठवे भवमें मोक्ष-सुख पावे. मतलबमें उपर कहे हुवे सब कार्य पर्यूषणमें करनेही चाहियें ऐसा ग्रं- थोंमें बताया है.

२५ पांच संवत्सरके नाम—१ आदित्य—तिनके ३६१ दिन होते है. आयुष्य वगैराका परिमाण इस संवत्सरसें जानना. २ ऋतु—तिनके ३६० दिन होते है. ३ चंद—तिनके ३५४ दिन अधिक कुछ कम १२ घडी होती है. और उनके एक महिनाके २९ दिन अधिक कुछ कम ३१ घडी जाननी. ४ नक्षत्र—तिनके ३२७ दिन अधिक ५७ घडी जाननी उन्के एक म- हिनेके दिन २७ अधिक कुछ कम १९ घडी होती है. ५ अभिवर्द्धित—तिनके ३८० दिन अधिक ४२॥ घडी होती है.

२६ महिनेके नाम—श्रावण—अभिनंदन १, प्रतिष्ट २, विजय ३, अतिवर्धन ४, श्रेयान् ५, शिव ६, शिशिर ७, हेमवान् ८, वसंत ९, कुसुम संभव

१०, निदाघ ११, और वननिरोह १२.

२७ तिथि और दिनके नाम—पूर्वांग १, सिद्ध-सेन २, मनोहर ३, यशोभद्र ४, यशोधर ५, सर्व काम समृद्धि ६, इंद्र मुर्धाभिशिक्त ७. सौमनस ८, धनंजय ९, अर्थसिद्ध १०, अभिजात ११, अत्यशन १२, शतंजय १३, अग्निवेश्म १४ और उपशम १५.

२८ रात्रिके नाम—उत्तरामा १, सुनक्षत्रा २, एलापत्या ३, यशोधरा ४, सौमनसा ५, श्रीसंभूता ६, विजया ७, वैजयंता ८, जयंता ९, अपराजिता १०, इछा ११, समाहारा १२, तेजा १३, अतितेजा १४ और देवानंदा १५.

२९ आठ मंगलके नाम-

३० आठमदके नाम—जातिमद, कुलमद, बल-मद, रुपमद, श्रुतमद, तपमद, लाभमद और ऐश्वर्यमद.

३१ सातनयके नाम—नैगमनय, संग्रहनय, व्य-वहार नय, ऋजु सूत्रनय, शब्दनय. समभिरुढनय और एवंभूतनय—ये ७ नय है.

३२ चार निक्षेपके नाम—नाम, स्थापना,

द्रव्य और जाव-ये चार निक्षेपे है.

३२ प्राणियोंका आयुष शास्त्रमें वर्त्तमान कालकी अंदर इस मुजब कहा है-मनुष्यका १२० वर्ष, हाथीका १२० वर्ष, घोमेका ४०, वाघका ६४, कवेका १००, गढेका २४, खमगी-गेंमेका २०, सारसका ६०, क्रौंचपक्षीका ६०, मुर्घेका ६०, बुगलेका ६०, सांपका १२०, चीलका ५०, सूअरका ५०; कानकमीआ (वागोलका) ५०, हंसका १००, सिंहका १००, कछुवेका १०० सें १००० तक, गीधका १००, बकरीका १६, कुत्तेका १२ सें १६ तक, जंबुका १३, हिरणका २४, बिल्लीका १२, तोतेका १२ बपैयेका ३०, मछलियोंका १०० सें १००० तक, जंटका २५, जैंसका २५, गौका २५, बैलका २५, घेंटेका १६, रुपारेल चीमीका ३०, जलूकका वा जैरवका ५०, जंदर और सस्सेका १० सें १४ वर्ष तक और गीरगट और गिलहरीका १ वर्षका आयुष्य होता है. जु कसारीका तीन महिनेका, बिछुका ७ महीनेका, चौरेंडी जीवका १ महीनेसें ७. महीने तकका, आयुष्य होता है. तेइंद्रियका ४९ दिनका.

३४ पच्चख्काण करनेसें (आज्ञा मुजब शुद्ध ज्ञावेंसें करनेसें) आगे कहे मुजब नरकायु टुटता है—नौकारसीसें १०० वर्षका, पोरिसीसें १००० वर्षका, साढ पोरिसीसें १०००० वर्षका, पुरिमुड्ढसें १००००० वर्षका, एकासनेसें १०००००० वर्षका, नीवीसे एक क्रोम वर्षका, एकल ठाणेसें दशक्रोम वर्षका, एकल दत्तीसें सो क्रोम वर्षका, आंबिलसें हजार क्रोम वर्षका और उपवाससें दश हजार क्रोम वर्षका नरकायु टूट जाता है.

३५ जिन ज्रुवनमें ८४ आशातना न लगने देनी. उन्के नाम—बलगम न मालना १ जुगार वगैरः रम्मत न खेलनी २, टंटा—फिसाद न करना ३, धनुर्वादादिक कलाका उपयोग न करना ४, कुगले न करना ५, तांबूल सुपारी फल पान वगैरः नहि खाना ६ तांबूलका कुचा तथा उद्गार न मालना ७, गाली देनी और विरुद्ध बोलना नहि ८, लघुनीति वमी नीति न करनी ९, शरीर न धोना १०, बाल समारना नहि ११, नाखोंन न समारना १२, लोहु न मालना. १३, ज्रूने हुवे धान्य वगैरः न खाना १४, चढे—घाव

चमडी न समारनी १५. औषधादिकसें पित्तवमन न करना १६, वमन न करना १७, दतुवन न करना १८ विसामा न करना १९, बकरी, हाथी और घोडे वगेरे कों दमन बंधन न करना २०, दांतोंका मैल न डालना २१, आंखोंका मैल न डालना २२, नखका मैल गंडस्थलकामैल, नाकका, कानका और मथ्थेका मैल न डालना २७, सोवे नहि २८, मंत्र भूतादिक ग्रह और राजादि कार्यका विचार करना नहि २९, विवाद वाद न करना ३०, हिसाब नामे नहि करना ३१, धान्यके परस्पर हिस्से न बेंच लेवें ३२, अपने धनका भंडार वहां न रखना ३३, पांवके उपर पांव चडाकर न बैठना ३४, गने नहि थापना ३५ कपडे न सुखाना ३६, दाल आदि धान्य उगावना नहि ३७ पापड वगैरा करना नहि ३८ बडी आदि सुखवनीके वास्ते शाक वगैरः न सुखावे ३९, राज भयसें मंदिरमें जा छुपाना नहि ४०, सोग रुदन आक्रंद न करना ४१, स्त्री राज्य देशभक्त कथा—विकथा न करनी ४२, बाण वगैरः अधिकरण शस्त्रं न घडना ४३, गउ बैल न बांधना ४४, ठंडी उडानेकों तापनी न

करनी ४५, रसोइ न बनानी ४६, रुपै—नोट-गीनी वगैरः परखना नहि ४७ अविधिसें निसिहि कहे बिना मंदिरमें न पेठना ४८, छत्र नहि धरना ४९, जूते न पहेन्ना ५०, शस्त्र बांधेहुवे दाखिल नहि होना ५१, चम्मर न ढोलाना ५२, मनकी एकाग्रता विना देव दर्शन पूजन न करना ५३, शरीरकों तेलका मालेश न कराना ५४, सचित्त पुष्प फल आदि पास नहि रखना ५५, हार मुद्रा वस्त्रादिक बहार निकालकर मंदिरमें (कुशोभावंत होकर) न जाना ५६, भगवानकों देखेहुवेभी हाथ न जोड़ना ५७, एक साडी उत्तरासंग न करना ५८, मस्तक मुकुट न धरना ५९, पघडीपरके पेचे बुट्टानी वगैरः छोडे विना अंदर न जाना ६०, फूलोंके कलगी तोरे सिरपर रखकें नहि जाना, ६१शरत न लगानी ६२, गेडीदडेका खेल न खेलना ६३, महेमानकों जुहार—कर मिलाकर सलाम-सेकहेन्ड वगैरः न करना ६४, गाल फुलाना बोलाना, सीटी बजाना आदि भांड चेष्टा नहि करनी ६५, रेकार तुकारादि तिरस्कार वचन न बोलना ६६, लहेनेदेनेकें संबंधकों खानेपीनेकी कसम खाकर

अडंगा न लगाना ६७, लडाइ मारामारी न करना ६८, बूटे बालोंकों न सुधारना. बूटे न करना, सिर न खुजालना ६९, कपडेसें पाउं पीठ बांधकर न बैठना ७०, खडाउपें न चढना ७१, लंबे पैर रखकर न बैठना ७२, पगचंपी न करानी ७३ पाउंका मैल न उतारना ७४, वस्त्रकों न झटकना ७५, खटमल जु वगैरः न बीनने अगर वहांही न डालना ७६, ७६, मैथुन न सेवना ७७, भोजन न लेना ७८ सोदा लेना बेचना नहि ७९, वैद्यक न करना ८०, शय्याकों न सुधारनी ८१, गुह्य लिंगादि न खुल्ला करना या दुरस्त न करना ८२, बाहु युद्ध न करना या मुर्घे वगैरःकों न लडाना ८३ और वर्षा समयमें प्रणालीसें पानी संग्रह न करे न्हावे वा पानी पीनेके बरतन न रक्खे ८४. ये ८४ उत्कृष्ट आशातनायें जिनमंदिरमें त्यागनीही चाहिये.

३६ बाइस अभक्ष्यके नाम—उले १, बरफ २, द्विदलके ठंडे—[redacted] गांश दहिमें रक्खे हुवे बडे ३, रात्रिभोजन ४, बहोत बीजवाले फल ५, वृंताक ६, धूप बतलाये बिगरका आचार ७, पीपलके फल

८ बड़के फल ९, गुलरके फल १०, अन्जाने फल ११, सब तरहके कंद सूरण वगैरः बत्तीश अनंतकाय १२, मूली वगैरः मूल १३, मिट्टी १४. विष १५, मांस १६, मदिरा १७, सहत १८, मख्का १९, कोमल–तुच्छ फल २० चलित रस २१ और कठुंबरफल वगैरः २२ अभक्ष्य है.

३७ सूतक विचार–सूतकका मायना क्या है? ऐसा कोइ पूछे तो उत्तरमें खुलासा करेंगे कि–श्री ठाणांगजीकी टीकामें कहा है कि सूतक याने अशूचिके पुद्गलोंका जिस मकानकों स्पर्श हुवा होवे, और जिस मनुष्यकों वैसे पुद्गलोंका स्पर्श हुवा होवे तिस्की योग्य शुचि यथाविधि कालसें होवे वहांतक सूतक कहाजाता है. हजामत करानेसें सूतक लगता नहि है; मगर हजामतका बाल देव मंदिरमें पड़जावे तो चोराशी आशातना अंदरकी एक आशातना लगती है. वास्ते बरोबर शरीर शुद्धि करकें पूजन करना. लोहु–खून बहेता हो तो देवपूजा नहि करनी. प्रसव और मृत्युकालके वख्त अशुचिके पुद्गल बहोतसें उछलते है, वो अमुक क्षेत्रतक वा अमुक काल

तक रहेते है. देशावर–विदेशमें कोइ सगा गुजर गया होवे तो न्हानेसेंही सूतक मिटजाता है. न्हानेका सबब दूसरा कुछ नहि है. लेकिन शोककी अशुचि–शोकके लियेसें खुन गर्म होगयाहो मगजपर जोस चरुगयाहो वो न्हानेसें दूर होकर जीकों राहत मिलती है इसलिये स्नान करना अच्छा है. अब जन्मके समयमें जो सूतक लगता है वो कहते है:—

पुत्र जन्मका १० दिन तक और पुत्री जन्मका १२ दिन तक सूतक होता है. इस प्रसंगमें १२ दिन तक इस मकानवाले मनुष्योसें देवपूजा न होसके; मगर दूसरे मकानमे रहेकर भोजन करते होवे तो दूसरे मकानको पानीसें जिन पूजा होसके. प्रसूता स्त्रीसें १ महिनेतक जिनबिंबादिकका दर्शन, वा ४० दिनतक जिन पूजाभी नहि होसकती है, और साधु साध्वीकों आहार पानीभी न व्होरा सकती है. इस प्रसंगमें घरके गोत्रीओंकोंभी ५ दिन सूतक लगता है. इसी प्रसंगमें १० दिनका सूतक लगता है. घोडी गौ, भैंस, उंटनी, बकरी वगैरः पशुके बच्चा जन्मे

तो १ दिनतक सूतक रखना चाहिये. (भैंसके बच्चा हुवे बाद १५ दिन तक, गौको १० दिन और बकरी का ८ दिन तक दूध नहि खाना. इतने रोज गये बाद काममें लेने लायक होता है.

अब मरण संबंधी सूतकमें ऐसा है कि जिस घरमें मरण हुवा होवे, वा मरनेवालेके गौत्रवालेके घरमें १२ दिन तक सूतक रहेता है. उस वक्तमें साधुओंकों आहारपानी नहि व्होराना, वा उस घरका अग्नि, पानी जिन मंदिरमें पूजाके काममें न लेना चाहिये; क्यों कि उस प्रसंगपर वो मकान दुगंछनीक कहा है; वास्ते उपर बताइहुइ मुद्दत बीतने बाद घर शुद्धि होती है. मुर्दके पास सोनेवालेकों ३ दिन बाद जिनपूजा करनी कल्पती है. मुर्दकों खांध देनेवाले (मुर्दकों उठानेवाले) कों ३ दिन तक देव दर्शन, सामायक, प्रतिक्रमणादि नहि करनो चाहियें चौथे रोज होसके. मुर्दका स्पर्श कीया होवे तो १२ प्रहरतक, और मुर्दका स्पर्श न कीया होवे तो स्नान कीये बाद शुद्ध होजाता है. जिस घरमें जन्म या मरणका सूतक होवे उस घरमें रहेनेवालेके साथ

भोजन करनेवालेसें १२ दिनतक जिनपूजा नहि हो सके. मुर्देको छुनेवालेको २४ प्रहरतक प्रतिक्रमण नहि कीयाजाता है. जन्मके दिनही मरजावे, देशांतरमें मरजावे वा सन्यासी मरजावे उस्का १ दिनही सूतक रहेता है. वेष बदलनेवालेकों ८ प्रहरतक सूतक रहेता है. खांध देनेवालेकों १५ प्रहरतक प्रतिक्रमण नहि करना; क्योंकि वहांतक सूतक रहेता है. दास दासी (अपने) घरमें मरजावे तो १ दिनसें ३ दिनतक सूतक होता है. आठ वर्षके अंदरकी उम्मरवाला बालक मरजावे तो ८ दिन तक सूतक रहेता है. गौ भैंसादि पशु मालिक रहेताहो उस घरमें मरजावे तो उस्का कलेवर बहार लेगये बाद सूतक मिटजाता है. जितने महिनेका स्त्रीका गर्भ गिरजावे उतने दिनका सूतक लगता है. सूतकके समयमें प्रतिक्रमणादि आवश्यक क्रिया मुंहसें उच्चारण कीये बिगर मनमें पाठ कर कीइ जावे—उस्में दोष नहि है.

ऋतुवंती स्त्रीकों ३ दिनतक बर्त्तनादिककों छुने न देवे. ४ दिनतक प्रतिक्रमण सामायक उन्सें न

होसके, मगर तपश्चर्या होसके. पांच दिन होगये बाद जिनपूजा होसके. रोगादि सबबसें ३ दिनके बादभी रुधिर देखनेमें आवे तो उस्का दोष नहि है. ऐसा हो तो विवेकसें पवित्र होकर जिनबिंबादिकका दर्शन, अग्र पूजा करनी, साधु साध्वीओंकों आहार-पानी देना; मगर प्रतिमाजीकी अंगपूजा नहि करनी चाहिये. ऐसा चर्चरी ग्रंथमें कहा है.

३८ प्रभुके कल्याणकके दिन गुणणा गिनाजाता है उन्का मंत्र—च्यवन—माताके उदरमें आवे तब 'ॐ श्री परमेष्टिने नमः' जन्मके दिन ॐ श्री अर्हते नमः दीक्षाके दिन ॐ श्रीनाथाय नमः केवल ज्ञान उत्पन्न होनेके दिन ॐ श्री सर्वज्ञाय नमः तीर्थंकर देव मोक्ष पधारे उस दिन ॐ श्री पारंगताय नमः इस तरह हरएक कल्याणकके दिन गुणणेका मंत्र जपाता है.

३९ जिन मंदिरमें स्वस्तिक करनेका सबब यह है कि—जिनालयमें अखंड स्वच्छ चावलोंका वा सच्चे मुक्ताफलका स्वस्तिक कीयाजाता है. वो बहोतही गंभीर और बहोत गहन अर्थ सूचक है, याने स्व-

स्तिकके चार शाखायें है वो मनुष्य, देव, तिर्यंच और नारकी ये चार गतिकों सूचना देती है उपरके तीन बिंदु वो ज्ञान, दर्शन और चारित्ररुप रत्नत्रयीकी सूचना करते है. अर्द्ध चंद्राकार चिन्ह है वो सिद्ध शिला—मुक्तिस्थानक सूचक है. और स्वस्तिककी अंदरके पांच बिंदु वो पांच परमेष्टिकी सूचना देते है. स्वस्तिक बनाकर यह याचना करनेकी है कि—है त्रैलोक्यनाथ! यह चारों गतियोंसें छुडाकर मुझे ज्ञानदर्शन चारित्ररुप रत्नत्रयीका दान देकर मोक्षस्थान प्राप्तिकों शक्तिमान बनादो. यदि ऐसा भावार्थ है; मगर स्वस्तिक करनेवाले उस्का मायना क्वचितही जानते होंगे. भावार्थ समझकर करना वोही उत्तम फलदायक है.

४० पांच प्रकारके स्वाध्याय—गुरु समीप शिष्य बांचे वो वांचना, शुद्ध भावसें सूत्रके बिचार पूंछे वो पृछना. पढाहुवा सूत्रकों पुनः याद करना वो परावर्त्तना, हृदयमें सूत्रके अर्थका बिचारना वो अनुप्रेक्षा, और जो दूसरेकों धर्म कथा सुनावे वो धर्म कथा.

४१ पांच प्रकारके देव—पंचेंद्रिय, तिर्यंच वा मनुष्य जिसने देवायु बांधा होवे वो देवगतिमें उत्पन्न होगा उन्को द्रव्यदेव कहेते है. श्री अणगार साधुओंकों धर्मदेव कहते है. चक्रवर्तीकों नरदेव कहते है, श्री अरिहंतकों देवाधिदेव कहते है और भुवनपति आदि चार निकायकों भावदेव कहेते है.

४२ नौकरवाली—मालामें मेरु सह १०८ मणके होते है वो हरएक मिलकर १०८ गुण मुकरीर कीये है, याने १२ गुण श्री अरिहंतजीके, ८ गुण श्री सिद्ध महाराजके, ३६ गुण श्री आचार्यजीके, २५ गुण श्रीउपाध्यायजीके और २७ गुण साधु मुनिराजके ऐसें. १०८ गुण के १०८ मणके रखे गये हैं.

४३ समुर्छिम मनुष्यकों पैदा होनेके १४ स्थल हैं—वडी नीतिमें, लघुनीतिमें, नाकके मैलमें, वमनमें, रसीमें, खूनमें, वीर्यमें, स्त्रीपुरुष संयोगमें, शुक्र पुद्गल भीगे उस्में, बलगममें, पित्तमें, शहेरकी गटरमें, मरे हुवे शरीरमे और सब असूचीके स्थलोंमें—ये १४ ठिकानेमें पैदा होते है.

प्रकरण बारहवा.

मार्गानुसारीके पेंतीस गुण.

१ न्याय संपन्न वैभव—सब प्रकारके व्यापारमें न्यायपूर्वक वर्त्तना—अन्यायसें नहि चलना. धणीकी नौकरीमें धणीने सोंपे हुवे काममेंसें पैसे नही खा-जाना. रुसवत नहि लेनी, कम समझवाले मनुष्य-को ठगनेका प्रयत्न नहि करना, व्याजबटेके करने वाले दूसरे—स्हामनेवाले शख्सोंको जूलथाप देकर व्याजके ज्याद पैसे न लेना. मालमें हलका माल मिलाकर बेचना नहि. सरकारी नौकरी करनेवाले शख्सने अपने अफसरका प्यार मिलानेके वास्ते लो-गोंके उपर कायदे विरुद्ध जुल्म न गुजारना मजदू-रीका धंदा करनेवालोंने रोजके दाम लेकर बराबर काम करना—खोटा दिल करना नहि. ज्ञाति और महाजन पंचोमें झगडा करता होतो अपनेसें विरुद्ध मतवालेकों द्वेष बुद्धिसें गैरवाजबी गुन्हेगार—तकसी-रवार ठहेराना नहि, किसी शख्सने अपना बिगाडा हो वो द्वेषसें उसके उपर झूठा आरोप नहि रखना,

वा उस्का नुकशान नहि करना. किसीकों झूंठा कलंक न देना, धर्मगुरुके बहानेसें पैसा लेनेके लिये जो बातें शास्त्रमें या धर्ममें न होवे वैसी बातें समझानी नहि. नौकरकी औरतके साथ अयोग्य कार्य बदफैलीमें प्रवर्त्तना नहि. धर्मके निमित्त पैसे निकलवाकर अपने काममें वापरना–खर्च देना नहि. धर्म संबंधी कार्यमें वापरनेके लिये जुंठी गवाही पूरकर पैसे लेने नहि, धर्म कार्यकी अंदर फायदा होता होवे तो उसबदल मनमें सोचना कि अपन धर्मके लिये झूंठ बोलते है–अपने कामके वास्ते बोलते नहि है; वास्ते उसमें दोष नहि ऐसा समझकर बिपरीत कार्य करना वो भी अन्याय है. जिनमंदिर वा उपाश्रयका कारोबार करनेवालोंने उस उस खातेकें मकान अपने घरकाममें वापरना नहि, वा उस खातेके मनुष्योंके पास खानगी काम कराना नहि. कोइ मनुष्य ज्ञातिभोजन करता हो मगर उस्के साथ कुछ अदावत होनेके सबबसें उस्के ज्ञातिभोजनकों बिगाडने–नुकशान पहुंचानेके वास्ते मारामारी–टंटा फिसाद खडा करना, चहियें उस्से

ज्यादे पकवान्न लेकर गांठ देना, एक दूसरे संप कर, जीधकर जास्ती खाजाना और भोजन खूट पडे वैसी कुयुक्तियें करनी वो भी अन्याय है. परस्त्री गमन करना नहि. स्त्री वा पुरुष कुछ सलाह पूंछे तो उन्कों जानते हुवे खोटी उलटी सलाह नहि देनी. अपने मालिकके हुकम सिवा उन्के पैसे उगा- लेनो नहि. एक दूसरेकों टंटा-फिसाद होवे वैसी समझ दैनी नहि. अपनी प्रतिष्टा-मान बढानेके वा- स्ते असत्य धर्मोपदेश देना नहि. अन्यमतावलंबी धर्म संबंधी सच्ची बातें कहेता होवे तो भी वो धर्म फैल जायगा ऐसा जानकर वो बातें झूंठी पाडनेकी युक्तिये चलानी वो भी अन्याय है. आप अविधिसें प्रवर्त्तन चलाता होवे और अन्य पुरुषकों विधिसें प्र- वर्त्तन करता देखकर उन्हपर द्वेष करना वो भी अ- न्याय हैं. (जो पुरुष विधिसें वर्त्तन चलाता हो उ- स्कों धन्यवाद देना और अपनेसे उस मुजब वर्त्त- नना की जाती हो तो उन्के वास्ते अफसोस करना वो अन्याय नही है.) सरकारकी किंवा म्युनिसीपा- लीटीकी जकात चोरी करनी, स्टेंप चोरी करनी वो

भी अन्याय है. वैसेही सच्ची पैदास—आमदनी छुपा दे के कम पैदास बतलाकर सरकारकों कम टयाकस देना वो भी अन्याय है. घर फोडकर चोरी करना, दूसरी कुंची—चावी लागुकर ताला खोलना वा लूंट चलानी वो भी अन्याय है. गुणवंत साधु मुनिराज भगवंत और गुरु महाराज के अवर्णवाद बोलनो नहि. कन्याविक्रय करकें पैसा मिलाकर आपका सादी करनी नहि. इन्के सिवा बहोतप्रकारके अन्याय हो सकते है. उन सबकों छोडकर व्यापार करना वो मार्गानुसारीका पहिला लक्षण है.

२ शिष्टाचार—ज्ञान और क्रियासें करके उत्तम आचरणवाले मनुष्योंके आचार उन्कों शिष्टाचार कहते है. उस्में लोग निंदा करें वैसा काम करना नहि, राजदंड होवे वैसा काम करना नहि वेश्या—परस्त्रीगमन त्याग देना. जुगार खेलना नहि. शीकार खेलनेकों जाना नहि, चोरी करनी नहि, जिस्में बहोत जिवहिंसा होतीहो वैसा व्यापार करना नहि. जिस्सें किसी शख्सकों नुकशान होताहो या जान जाताहो ऐसा झूठा बोलना नहि. बनसके तो सब तरहसें

झूंठ बोलना जोम्ही देना. मांस, मदिरा ताम्ी, सहत, मश्का, कंदमूल वगेरः अन्नक्ष्य पदार्थ खाना नहि.

३ समान धर्माचरणवालेके साथ विवाह करना. मगर एक गोत्रिय साथ करना नहि. कलिकाल सर्वज्ञ श्रीमान् हेमचंद्राचार्यने योगशास्त्रमें एक गोत्रवालेके साथ विवाह करनेका निषेध कीया है. स्त्री न्नर्त्तारका धर्म एकही होवे तो धर्म संबंधी तकरार नठनेका संन्नव नहि रहेता है, और धर्मकार्य करनेमें परस्पर साधनन्नूत होपम्े.

४ सब तरहके पापोंसे म्रना—कारणकि पाप करनेसें यह लोकमें निंदा और परलोकमें नरकादि डुःख न्नोगवने पम्ते है.

५ देशाचार मुजब चलना—जिस देशमें रहेते होवे नस देशमें जो जो काम करनेसें निंदापात्र न होवे वैसें चलना. कपम्े जेवर खानपानादि देशरीति मुजबही रखना. क्योंकि जिस देशमें जैसे कपम्े पहेन्नेको रीवाज होवे वैसेही न पहेन्नते विपरीत पोशाख रखनेसें चर्चा खम्ी होती है.

६ साधु साध्वी श्रावक श्राविका और राजा

प्रधान भंमारी कोटवाल वगैरः किसीकाभी अवर्ण-
वाद बोलना नहि.

७ जिस घरमें बारी दरवज्जे वगैरः पेठने नि-
कलनेके अनेक मार्ग होवे, वैसे घरमें निवास नहि
करना. वैसे घरमें रहेनेसें चोर वगैरःका आनाजाना
और स्त्रीकों गैरवर्तन चलानेका काम सहेल हो पमे.

८ अशुद्ध स्थानवाले मकानमेंभी रहना नहि.
जिस मकानकी जमीनमें घून-उधेइ लगी होवे,
जिस घरके नीचे हड्डी मुर्दे दटे हुवे होवे, वा मुर्दे
जलाए होवे, वा आसपास वेश्या, जुगारी चोर क-
साइ आदि रहेते हो वैसे घरकों गेमकर अछे पमो-
समें रहेना. पमोसी धर्मबंधु होवे तो वहोतही अछा.
अन्य मतावलंबीके पमोससें उन्हके आचार विचार
अपनेमें घुस जाताहै. कि वहोत श्रम उठातेंभी पी-
गमीसें दूर हो सकते नहि और वहोत करकें पाप-
बंधनमेंही पमना पमता है.

९ वहोत गुप्त स्थानमें भी नहि रहना-रहे-
नेसें गुणी पुरुषोंकों दान देनेका अवकास मिलता
नहि फिर अग्नि प्रकोपादिक वख्त जान माल ब-

चाना भी मुश्केल हो पडता है.

१० वहोत खुल्ले स्थानमें भी रहेना नहि. रहेनेसें स्त्रीवर्ग संपूर्ण शरम अदब समाल नहि सकती फिर दरवजेके आगे सोरबकोर—गुल मचा रहा होनेसें स्थिर चित्तसें कुछभी हो सकता ही नहि.

११ सत्संग—गुणीजनोंका संग करना—मुनिमहाराज, देवगुरु भक्तिकारक श्रावक. और प्रमाणिक गृहस्थोंके साथही ज्यादा परिचय रखना. मिथ्यात्वीका संग करना नहि. करनेसें अपनी धर्मबुद्धि भ्रष्ट हो जाती है. सुसंगसें अच्छी बुद्धि होती है और उनके सदाचरण देखकर अपनकों भी सदाचरण ग्रहण करनेका अवकास मिलता है. जुगारी, लुच्चे, चोर, विश्वासघाती, ठग—धूतारे वगैराकी सोबत करनेसें उन्के जैसे नीच कृत्य करनेका इरादा सहजही हो जाता है; वास्ते वैसे अधर्मीउका त्याग करना.

१२ माता पिताके हुकममें रहेना. उन्की पूजा करनेवाले बनना, हरहमेशां प्रातःकाल उन्को वंदन करना, विदेश जानेके वख्त और विदेशसें घर आवे उसवख्त भी विनयपूर्वक चरण पूजन करना.

जो मावाप बुढ्ढे हुवे होवे तो उन्की खाने पीने पहेन्ने उढनेकी शक्ति—गुजास मुजब खातर बरदास रखनी कोइ वख्त गुस्सा करना नहि. कटुवचनका प्रहार करना नहि उन्के आदेश—हुकमको उल्लंघन करना नहि. कभी गैर व्याजबी नहि करने लायक काम बतावे तो चूप रहेना; मगर कुछ अयोग्य वचन कहेना नहि अर्थात् अयोग्य कर्म करनेसे गैरफायदे होते है वो विनयपूर्वक समझानेका प्रयत्न करना उन्होका अपनेपर अवर्णनीय उपकार है माताने नव मास तक उदरमे धारण कर भार वहन कर अपने लिये अनेक वेदनायें सहन कीइ है—विष्टा मूत्रादि मलीन तत्वोसे अपना बार बार प्रक्षालन कीया है फिर अपन व्याधि भुक्तने होवे उस वखत भूख प्यास सहन करके अनेक उपचार कर अपना शुद्ध बुद्धिसे पालन कीया है. ये सिवा परोक्षतासें उनके उपकारका निर्जरना निरंतर वहन कीयाही करता है. माता पिता तो जगत्में कल्पवृक्ष समान है. अंतिमचरमतीर्थंकर श्री महावीर स्वामि त्रिसला देवीजीके उदरमे आये पीछे मात[illegible] '[illegible] [illegible] [illegible] होगी ' ऐसा विचार

किंचित् वख्त अचलायमान रहे उतनेमे तो माताजीने अनेक कल्पांत कर मूर्छित हो ज-मीनपर पड गये उसो वख्त भगवंतने अभिग्रह कीया कि 'मेरे माता पिता स्वर्ग सिधाये पीछेही मैं दीक्षा अंगीकार करुंगा.' अहा! पुत्रकी माताकी तर्फ पूज्य बुद्धि तो देखो!! और लक्ष्मण, वैसेही पांडवोने माता पिताकी जो सेवा कीइ है उस्का व-र्णन सहस्र जीव्हासें करनाभी मूश्केल है, उन्के कीयेहुवे उपकार बदला तो अपन देसकते नहि तोभी निरंतर उन्कों धर्म रस्तेमें जोडनेके लिये प्रयत्न कर-कें भक्ति करनी.

१३ जहां स्वराज्य वा परराज्यका भय होवे वैसे स्थळमें रहेना नहि. रहेनेसें धर्मकी धनकी और शरीरकी हानी होती है.

१४ पैदासके प्रमाणमें खर्च करना—पैदाशके चार हिस्से करना, उन्मेसें एक हिस्सा घरमें रखना दूसरा व्यापारमें रोकना, तीसरा आपको और कुटुं-बके खानपान वा वस्त्रादिकमे बापरना, और चौथा धर्म कार्यमे व्यय करना. इस मुजब पैदासका व्यय

करना यदि पैदाश कम होवे तो दसवा हिस्सा, किंवा शक्ति होवे तो ज्यादा हिस्सा धर्म निमित्त अवश्य वापरना. बडी मेहनतसें उदर पोषण होता हो तो मन कोमल रखकर धर्म कार्यमें द्रव्य व्यय करनेकी अनुमोदना करनी चाहिये.

१५ धनके अनुसार वस्त्राभूषण पहेन्ना—थोडा द्रव्य होवे और धनवानके समान कपडे पहेन्नेसें, और ज्यादा धन होवे और गरीबके जैसे कपडे पहेन्नेसें लघुता होती है.

१६ शास्त्र श्रवण करनेमें चित्त पिरोना—बुद्धिके आठ प्रकारके गुण उपार्जन करना—याने शास्त्र सुन्नेकी चाहना करनी १, शास्त्र सुन्ना २, उस्का अर्थ समझना ३, वो यादीमें रखना ४, उह—उनमें तर्क करना वो सामान्य ज्ञान ५, उपोह—विशेष ज्ञान संपादन करना ६, उहापोह—संदेह न रखना ७, तत्त्वज्ञान याने अमुक वस्तुका ऐसाही है ऐसा निश्चय करना ८, पूर्वोक्त रीतिसें शास्त्र श्रवण करके अपने औगुण

भोगनेकों उद्यमवंत होना.

१७ अजीर्ण—बदहजमी मालुम होवे तबतक आहार नहि करना—खाइहुइ वस्तु हजम न हुइहो वहांतक दूसरा खोराक नहि लेना. रोग उत्पन्न हो वैसी वस्तु खानी नहि. स्वादिष्ट वस्तु देखकर शक्ति और हदसें ज्यादे खानी नहि.

१८ अकाल वख्त भोजन करना नहि भोजनकेलिये जो वख्त मुकरीर कीया गयाहो वो वख्त भूलना नहि.

१९ धर्म अर्थ और काम ये तीन वर्ग साधनेकों गृहस्थावस्थामें जो समय धर्म साधनका हो वो वख्त धर्म साध लेना. पैसा पैदा करनेके वख्त पैसा संपादन करना. भोग—उपभोग भोगनेके समय उस्मे तत्पर रहेना. क्योंकी धर्म साधन करनेके वख्त द्रव्य उपार्जन करनेका दिल होनेसें धर्मका लाभ गुमा बैठते है. सब वस्तुकी प्राप्ति धर्मसेंही है. धर्मसें चुक जावे तो तीनुं वर्ग याने अर्थ काम और मोक्ष ये

तीनुं हाथमेंसे चले जाता है. वास्ते दिनमें तीनु वर्ग साधनेका वख्त मुकरीर कर लेना जिस्सें द्रव्य पैदा करनेमें और संसारोचित काम करनेमें विघ्न—हरकत न आवे, जगत्‌में निंदाके पात्र न होवे और धर्म साधन अच्छी तरहसें होवे युं चलना.

२० मुनिराज महाराजकों दान देनेरुप आतिथ्य विनयपूर्वक करना. दुःखी जनोकों अनुकंपादान देना, मुनिकी सेवा—भक्ति करनेमें कुशल रहेना और अहंकार रहित दान देना.

२१ जिन मतमें सन्मानपूर्वक राग—स्नेह रखना—खोटा जूंठा हठ—कदाग्रह करना नहि.

२२ गुणीजनोंका पक्ष करना—उन्के साथ सौजन्यता और दाक्षिण्यता उपयोगमें लेनी. जो जो अच्छे काम करनेके होवे वो वो बंदरकी तरह चपलतासें नहि मगर स्थिरतासें करना. निरंतर प्रियभाषित होना. किसिकों दुःख लगे—बुरा मालुम होवे वैसा नहि बोलना. अपनी और परायाके आत्माका

उपकार करनेकी बुद्धि रखनी, गुणीजनोंकी अनुयायीसें चलना.

२३ जिस देशमें जानेकी शास्त्रकार रजा न देते होवे, वा राजाका मना हुकम होवे तो वह देशमें उल्लाइ करकें जाना नहि. वैसेंही जिस वक्तमें जो काम करनेकी रजा—हुकम न हो तो उस वक्तमें वह कार्य नहि करना. जैसें उष्णकालमें खेती करे तो फायदा हाथ न लगे, वर्षाकालमें ठंडे पदार्थ खानेसें पाचन न होवे, और समुद्रकी मुसाफिरिसें नुकशान होवे, यवनके मुल्कमें जानेसें जबरदस्तीसें अभक्ष्य वस्तु खिलादेवे, और जबरदस्तीसें धर्मभ्रष्ट करे वैसे मुल्कमें नहि जाना. अपनी शक्ति—गुंजास ध्यानमें लेकर काम करना; कारणकि शक्तिसें ज्यादे कार्य करनेसें धनकी और मनकी हानी होनेका संभव है.

२४ व्रतकी अंदर स्थिर चित्तवाले और ज्ञानसें सावधान हो वैसे पुरुषकी पूजा करनी आत्म-

हितार्थ उन्के पाससें ज्ञान संपादन करना और उन्की प्रवृत्ति मुजब चलना.

२५ पोषण करने लायक स्वकुटुंबका आहार वस्त्रादिकसें पोषण करना.

२६ कुछ्भ काम शुरु किये पहेलेही शुभ अशुभ परिणाम दीर्घ दृष्टिसें सोचना, और पीछे कार्यारंभ करना.

२७ विशेषज्ञ याने सामान्य और विशेषकों पहिचानते शीखना वा उसकी माहेती मिलानी.

२८ लोकवल्लभ—याने सब लोगोंको प्यारे लगें वैसा काम करना. किसीका दिल दुखाना नहि. अनीतिसें अगर धर्म विरुद्ध आचरणसें लोगोमें प्रिय होनेकी चाहना रखनी नहि.

२९ लज्जावंत होना—बेशरमा कार्य करना नहि.

३० विनयवंत होना—देव, गुरु, सुश्रावक, कुटुंबी, अध्यापक, हुन्नर सिखानेवाला उस्ताद, राजा, प्रधान वगैरः शेठ—साहुकार, कोइभी गुणसें, धनसें,

पढिसें, और उम्मरसें ज्यादा होवे उन्सबका यथोचित विनय करना.

३१ दुःखी जनके उपर हमेशां दया करनेमें कुशल रहेना. ज्यों बने त्यों हिंसाका काम करना नहि

३२ सौम्यदृष्टि रखनी—कोइ वख्त कषायकी प्रकृति धारण करनी नहि कि जिस्सें दूसरेभी अपने उपर द्वेष रक्खे याने दूसरेकों द्वेष उत्पन्न होवे वैसा गुस्सा नहि रखना.

३३ छः शत्रुपर फतेह मिलानी—याने पहिला शत्रु काम—स्त्रीसेवा—परस्त्रीका सर्वथा त्याग करना. अपनी स्त्रीकाभी जैसे रोगार्त्त पुरुषकों औषध खानेकी जरुर पडनेसें (दवा) खावे तैसें ऋतुस्नानावसरमें केवल चित्तकी उपाधि मिटानेके निमित्त सेवन करे. भावना उस्कों त्यागदेनेकीही रखनी. कुत्तेकी तरह निरंतर वा एक रात्रिमें बहोत दफै स्त्रीसंग करना ये उत्तम पुरुषका लक्षण नहि है. नित्य स्त्रीसेवनसें खुब अपना और स्त्रीका शरीर निर्बल हो-

जाता है, फिर ऐसी बुरी आदतसें स्त्रीके वियोगमें परस्त्री सेवनकी बुद्धि होआती है, बहोतकरकें इस्सें दुनियांमें लघुता प्राप्त होती है. कोइ विश्वास नहि करता है. राजा जानजाय तो शीक्षाके पात्र करदेवे और भवांतरमें नरकके दुःख भुक्तने पडें, वास्ते ज्युं बने त्युं कामकों जीत लेना चाहिये.

दूसरा शत्रु क्रोध—किसीके उपर गुस्सा करना नहि. सब प्राणीपर समभाव धारण करना. एक क्रोड पूर्वतक संयम पालकर पैदा कीयाहुवा फल क्रोध करनेसें क्षणभरमें नष्ट होजाता है, और कुगतिके भाजन होना पडता है. हालाहल विष खाया होवे तो उस्से एकही दफै मृत्यु होता है. मगर क्रोधरुप हालाहलके वश होनेवाले प्राणीका तो अनंत दफै मृत्यु होता है. वास्ते हमेशां क्षमा गुण धारण करना शीखलेना.

तीसरा शत्रु लोभ—लोभी मनुष्यका चित्त हर हमेशां फिक्रमेंही भटकता हुवा मालुम देता है. उ-

न्कों किसी तरहसें संतोष पैदा होताही नहि. फिर लोभके वश होनेसें प्राणी नहि करने लायक काम करनेमें तत्पर होता है. उससें इस दुनियांमें हीलना निंदा होती है और परजन्ममेंभी दुःख भुक्तने पडते है—इसलिये जिस वख्त जो मिले उसीमेंही संतोष वृत्ति रखनी और नीतिसें उद्यम करना. पूर्व जन्मोंमें जैसा पुन्य संपादन कीयाहो वैसाही यह जन्ममें मिलता है लोभ करनेसें ज्यादा मिलता नहि—ऐसा बिचार करके संतोष पकडना. संतोषसेंही लोभ शांत होता है.

चौथा शत्रु मान—मानदशा धारण करनेसें जगत्में लघुता प्राप्त होती है. लोग अहंकारीका उपनाम देते है गुरु और वडिल—बडोंका विनय होता नहि, विद्या हुन्नर आता नहि और मनुष्य जन्म मिलनेपरभी धर्मसाधन कर सकता नहि वास्ते मान छोडकर गंभीरता धारण करलेनी.

पांचवा शत्रु हर्ष—कोइभी काममें अत्यंत हर्ष

धारण नहि करना. हर्ष करनेसें गर्वकी पायरीपें चडते देर नहि लगती है. यह संसारमें सब वस्तु क्षणिक है. शरीर आज सुखी मालुम होता है और कल अनेक व्याधीयोसें व्याप्त होजाता है. लक्ष्मी चंचल है. आज जिस घरमें लक्ष्मी लहर लेरही है उस घरमें दूसरे रोज भूत निवास करते हुवे नजर आते है. वास्ते ऐसे अस्थिर पदार्थ पूर्वकृत पुण्यसें प्राप्त होवेहो तो उन्का सदुपयोग करना. मगर अत्यंत हर्षित होकर गर्व करना नहि.

छठ्ठवा शत्रु मद—आठ जातिके मद है—याने ज्ञातिमद, कुलमद, बल पराक्रममद, रुपमद, ऋद्धि धन—दोलतमद, लाभमद, तपमद और विद्यामद यह ८ है. जाति—ज्ञातिका मद गर्व करनेसें नीच जातिमें पैदा होता है. कुलमद करनेसें नीच गोत्र बंधाता है. बलमद करनेसें आते जन्ममें निर्बलता प्राप्त होती है रुपका मद करनेसें बदसिकल प्राप्त होती है. धन और ठकुराइका मद करनेसें परजन्ममें दरिद्रि होवे

ज्युं ज्युं मिलता जाय त्युं त्युं ज्यादे लोज्ञ करे और मनमें चाहे कि मैंतो कज्ञी खोनेवालाही नहि हुं. जो जो व्यापार करुंगा उस्में पैदाही करुंगा—ऐसा आजीविकामद रखनेवाले मनुष्यकों किसी वख्त ऐसा धक्का लगजाता है कि सब दिनका पैदा कियाहुवाज्ञी एक दिनमें चला जाता है. और निर्धनावस्था हो जाती है. वास्ते लोज्ञका मद करना नहि. तपका मद करनेसें तपश्चर्या निष्फल हो जाती है. विद्याका मद करना नहि. विद्याका मद करनेवाला शख्स अपनेसें ज्यादा विद्वान हो उस्कों मान दे सकता नहि. गर्विष्ठ होनेसें संका पमे तो ज्ञी दूसरेकों पूछ ज्ञी सकता नहि. ऐसें आस्ते आस्ते अपनी विद्या गुमा बैठता है. और आते जन्ममें अज्ञानी होता है. इस लिये विवेकी जनकों ये ८ प्रकारके मद छोमकर अगर्विष्ठ बनना.

३४ कृतज्ञता—अपनेपर किसीने उपकार कीया

हो वो भूल जाना नहि. वख्त हाथ लगे तब उप-कारं बदला अछे काममें दे देना.

३५ पांचों इंद्रियोंको कब्ज करनेमें हुशीयार रहेना. इंद्रियें छुट्टी रखनी नहि—छुट्टी रखनेमें यह लोकमें भी बहोत नुकशान होता है. जैसेंकि स्पर्शें द्रियका सुख लेनेके लिये हस्ति बंधनमें फंस जाता है. रसेंद्रियके विषयसें मछलियां प्राणमुक्त होती है. घ्राणेंद्रियके विषयसें भ्रमर कमलपर बैठता है और सूर्य अस्त हो जानेसें कमल बंध हो जाता है उस्सें कमलकोषमें कैद हो जाता है. चक्षु इंद्रियके विषयसें पतंगीये चीरागमें पड़कर अपनी जान गुमाते है. श्रोतेंद्रियके विषयसे हिरन शीकारीके ताबे होता है. इस तरह एक एक इंद्रियकों छुट्टी छोड़नेसें प्राण जाते है तब पांचोंकों विषय में लुब्ध हो जानेसें परजन्ममें कैसे दुःख भुक्तने पड़े? उस्का वर्णन तो ज्ञानी महाराजही करसके; वास्ते यथाशक्ति विषयका संकोच करना. इस मुजब मार्गानुसा-

रीके ३५ गुण जिस पुरुषमें होवे वो पुरुष धर्मके लायक जानना. ऐसें गुणोंसें मनुष्य समकितवंत होता है. श्राद्धधर्म और मुनिधर्मको पाता है, और अंतमें मोक्ष सुख भुक्तता है.

धर्मसंग्रह ग्रंथमें नीचे मुजब मार्गानुसारीके ३५ गुण कहे हैः—

तत्र सामान्यतो गेहिधर्मो न्यायार्जितं धनम् ॥
वैवाह्य मन्यगोत्रीयैः कुल शील समैः समम् ॥ १ ॥
शिष्टाचार प्रशंसारि षड्वर्गत्यजनं तथा ॥
इन्द्रियाणां जय उपप्लुतस्थान विवर्जनम् ॥ २ ॥
सुप्रातिवेश्मिके स्थाने नातिप्रकटगुप्तके ॥
अनेकनिर्गमद्वारं गृहस्य विनिवेशनम् ॥ ३ ॥
पापभीरुकता ख्यात देशाचारप्रपालनम् ॥
सर्वेष्वनपवादित्वं नृपादिषु विशेषतः ॥ ४ ॥
आयोचित व्ययो वेशो वित्तवाद्यनुसारतः ॥
मातापित्रर्चनं संगः सदाचारैः कृतज्ञता ॥ ५ ॥
अजीर्णेऽभोजनं काले भुक्तिः सात्म्याद लौल्यतः
व्रतस्थज्ञानवृद्धार्हा गर्हितेश्वप्रवर्त्तनम् ॥ ६ ॥

ज्ञतंब्यज्ञरणं दीर्घदृष्टि र्धर्मश्रुति र्दया ॥
अष्टबुद्धिर्गुणैर्योगः पक्षपातो गुणेषुच ॥ ७ ॥
सदानज्ञिनिवेशश्च विशेषज्ञानमन्वहम् ॥
यथार्हमतिथौ साधौ दीनेच प्रतिपन्नता ॥ ८ ॥
अन्योन्यानुपघातेन त्रिवर्गस्यापि साधनम् ॥
अदेशकालाचरणं बलाबलविचारणम् ॥ ए ॥
यथार्हलोकयात्रा च परोपकृतिपाटवम् ॥
ह्रीः सौम्यता चेति जिनैः प्रज्ञप्तो हितकारिज्ञिः ॥१०॥

अर्थः—पहिले सामान्यतासें गृहस्थका धर्म कहेते है. न्यायोपार्जित धन १ समान कुल शीलवाले अन्य गोत्रीयके साथ विवाह करना २ उत्तम आचारकी प्रशंसा ३, काम क्रोधादि छः प्रकारके अंतरंग शत्रुउंका त्याग करना ४, इंडियोंका जय करना ५, उपड़ववाले स्थानका त्याग करना ६, अछे पमोसवाले स्थानमे अति प्रकट नहि वैसे और अतिगुप्त नहि वैसे स्थलमे तथा जाने आनेके अनेक द्वारवाला घर बांधना ७, पापसें मरना ८, देशाचार पालना ए.

किसीकीभी निंदा न करनी, उन्मेंभी बहोतकरके राजाकी निंदा तो बिलकुल नहि करनी १०, पैदाश मुजब खर्च करना ११, वैभवानुसार वेष रखना १२, मातापिताकी सेवा करनी १३, सदाचारवालेका संग करना १४, कीयेहुवे कामकी कदर करनी १५, अजीर्णमें भोजन न करना १६, नियमित वख्त लोलुपता छोडकर पाचन होवे उतनाही खाना १७, व्रत धारण करनेवाले ज्ञानवृद्धकी सेवा करनी १८, निंदित कार्यमें प्रवृत्ति करनी नहि १९, भरणपोषण करनेलायक (मातापितादि कुटुंब और चाकर वगैरः) का भरणपोषण करना २०, दीर्घदृष्टि रखनी २१, धर्म श्रवण करना २२, दया पालनी २३, बुद्धिके आठ गुणोंका योग करना २४, गुणके विषे पक्षपात करना २५, हमेशां कदाग्रह रहित होना २६, प्रतिदिन विशेष ज्ञान मिलाना २७, अतिथि, साधु तथा गरीबका यथायोग्य सत्कार करना २८, परस्पर उपघात न होवे वैसा धर्म, अर्थ और काम साधलेना २९, निषेध देशकालका आचरण करना नहि ३०, स्व

परका बल अबलका विचार करना ३१, यथायोग्य लोकंयात्रा याने लोकरीवाज मुजब चलना ३२, परोपकार करनेमें कुशल रहेना ३३, लज्जा रखनी-निर्लज्ज न होजाना ३४, और सौम्यता याने अक्रूरता धारण करनी. इस मुजब हितकारी जिनेश्वर भगवानने फरमाया है.

॥ इति धर्मसंग्रह ॥

शुद्धिपत्रक.

पृष्ठ.	लींटी.	अशुद्ध.	शुद्ध
१	१४	महेमान	पहेचान
५	५	देशमें	देशके
१४	६	वाव्य	वायव्य
१००	१४	जीकों	जीवकों
१०६	१०	छुपाते	नहि छुपाते
१५६	६	३५	३६

———:०:———

समाप्तोयं ग्रंथः

पाठशाळामां दाखल थवा इच्छनार विद्यार्थिओए नीचेना सीरनामे पोतानी लायकातना सर्टीफिकेट साथे अरज करवी.

विज्ञप्ति.

सर्व सद्गृहस्थोने सुविदित छे के, श्री मेसाणा यशोविजयजी जैन संस्कृत पाठशाळा, आज नव वर्षथी खोलवामां आवी छे, जेमां सर्व अभ्यासीओने माटे, खावा पीवानी तथा पुस्तक विगेरेनी सवड होवाथी आत्मार्थी, परार्थी, अने स्वार्थी, विद्यार्थिओ, निर्विघ्ने पोताना हेतु पार पाडी शके छे, वळी मुनि महाराजाओने पण अभ्यासनी अनुकूळता उंचा प्रकारनी मळी शके छे, कारण के अत्रे न्याय, व्याकरण, अने धर्म प्रकरणोना अनुभवी अध्यापको राखवामां आव्या छे. अभ्यासीओ तैयार थया पछी तेमने लायकात मुजब परीक्षक तथा नाना मोटा गामोना अध्यापकोनी जग्या आपवामां आवे छे. परीक्षको पोताना काम साथे उपदेशद्वारा नवि नवि पाठशाळाओ खोलावे छे. सर्व गामोनी पाठशाळाओमां जोइतां पुस्तको तथा जरुर जणाय तो शाळाना खर्चमां पण केळवणी खातामांथी मदद आपवामां आवे छे. तेथी शिक्षको तैयार करवानो उद्यम शीघ्रताथी चाले छे, जेने माटे हालमां विद्यार्थिओनी संख्या त्रीशनी छे. तेओमां केटलाक कर्मग्रंथनो अभ्यास करे छे. वधारे शिक्षकोनी तथा परीक्षकोनी जरुरीयात होवाथी नवा योग्य विद्यार्थिओनी संख्या वधती जाय छे. तेथी आ कमिटिना मेम्बरोने आशा छे के. आवा अद्वितीय खाताने मदद आपवा धनिकना धननो सद्व्यय थशे. ली. जैनश्रेयस्कर मंडळना सेक्रेटेरी.

शा. वेणीचंद सुरचंद.

मेसाणा—यशोविजयजी जैनपाठशाळा.